* श्रीः *

भूमिका

यह शास्त्रार्थत्रय कानपुर लेखबद्ध हुआ है। ता० ७ अप्रैल सन् १९१८ को 'पुराण' विषय पर हुआ। आर्यसमाज की तरफ से ब्रजमोहन झा शास्त्रार्थकर्त्ता और सनातनधर्म की तरफ से पं० गिरिधर शर्मा जी थे। इस दिन पुराणों का शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। ता० १८ अप्रैल सन् १९१८ को आर्यसमाज रेलबाजार के पिण्डाल में 'श्राद्ध' और ता० १९ अप्रैल को 'मूर्तिपूजा' पर शास्त्रार्थ हुये, इन शास्त्रार्थों में भी जो कापी में लिखा जाता था वही पबलिक् को पढ़ कर सुना दिया जाता था। आर्यसमाज की तरफ से ब्रजमोहन झा और सनातन धर्म की तरफ से पं० कालूरामजी शास्त्री शास्त्रार्थकर्त्ता नियत हुये थे। जिस दिन से सनातनधर्म और आर्यसमाज कानपूर में ये शास्त्रार्थ हुये हैं उस दिन से आर्यसमाज कानपुर का शिर नीचा हो गया, फिर भूल करभी आर्यसमाज कानपुरने शास्त्रार्थ करनेका नाम नहीं लिया। इन शास्त्रार्थों को हम प्रकाशित करके पबलिक् के आगे रखते हैं हमें आशा है कि पबलिक् इनको पढ़ कर लाभ उठावेगी।

विष्णुदयाल मिश्र

मंत्री मर्यादापुरुषोत्तम सनातन धर्म सभा कानपुर।

नोट—

छपते समय १६० पृष्ठ के आगे १६१ की संख्या होनी चाहिये थी किन्तु फोरमैन की गलती से १७१ होगई । इसमें कोई यह न समझे कि इस किताब के १० पृष्ठ कम हैं, कम नहीं हैं पृष्ठ १६० और १७१ का लेख मिल कर चलता है ।

प्रकाशक—

* श्रीहरिः *

कानपुर का प्रथम शास्त्रार्थ ।

विषय—"पुराण वैदिक हैं" ।

ता० ७ अप्रैल सन् १९१८ ई०

सनातनधर्म (प्रथमवार)

आज शास्त्रार्थ पुराणों की वैदिकता या अवैदिकता पर है। हम पुराणों को वैदिक कहते हैं, और हमारे भाई दूसरे पक्ष वाले अवैदिक। वैदिक का अर्थ यही है कि वेद और पुराण में परस्पर अनुकूलता हो। वेद पुराण को और पुराण वेद को प्रमाण मानता हो। सो देखते हैं कि वेद स्पष्ट पुराण की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। अथर्व० ११।७।१(२४) में मन्त्र है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवादिविश्रिताः ॥

इसका अर्थ है कि सबके अन्त में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक्, साम, छन्द और पुराण—यजु के साथ उत्पन्न हुए हैं।

जब वेद स्वयं पुराण को परमात्मा से उत्पन्न बताता है, तो वेद के उसका प्रमाण मानने में कोई सन्देह नहीं रह सकता।

दूसरे स्थान में भी अथर्व १५। ६। ११ में लिखा है—

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। इत्यादि

इस प्रकरण में वेदों की तरह पुराणों का भी विराट् का अनुगमन बताया है।

ब्राह्मण भाग जो हमारे सिद्धान्त में वेद है, और श्री स्वामी दयानन्द जी भी उसे प्रमाण अवश्य मानते हैं उसमें पुराणों की प्रामाणिकता सुस्पष्ट है। गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग २ प्रपाठक में लिखा है कि—

इमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः स ब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः। इत्यादि।

इन वचनों से पुराण की वैदिकता सिद्ध हो जाती है। पुराण तो वेद को प्रमाण प्रत्येक स्थान में लिखते ही हैं। इससे परस्परानुकूलता होने से वैदिकता में कोई सन्देह नहीं।

(ह०) गिरिधर शर्मा।

आर्यसमाज (प्रथम वार)

आपने लिखा है कि वेदों की अनुकूलता पुराणों से मिलती है। निस्सन्देह ऐसा होने पर पुराण प्रामाण्य हो सकते हैं किन्तु दोनों को देखने से पता चलता है कि उनके विषयों में परस्पर अत्यन्त विरोध है और सृष्टि नियम विरुद्ध असम्बद्ध एवं भ्रष्ट विषयों का प्रतिपादन पुराणों में है। वेद में इस प्रकार के विषयों का मिलना असम्भव है। यथाः—

१—श्रीमद्भागवत ६ स्कन्ध में बुध की उत्पत्ति का विषय देखिए वहां पर आचार्य बृहस्पित की पत्नी से शिष्य चन्द्रमा ने समागम किया है जो कि अत्यन्त घृणित कर्म है। क्या वह पुस्तकें जो कि ऐसी भ्रष्ट बातों से पूर्ण हैं कदापि वेदानुकूल हो सकती हैं।

२—श्रीमद्भागवत में स्पष्ट वर्णित शिव और मोहनी का चरित्र भी कैसा अश्लील है। क्या मोहनी के ऊपर कामवश होकर शिव जी का भागना और पुनः उनके वीर्य से धातुओं का उत्पन्न होना सम्भव है।

३—महाभारतोक्त उतथ्य की कथा देखिये उतथ्य की स्त्री ममता से वृहस्पति ने कैसा अत्याचार किया है। जहां कि गर्भस्थ बालक को एड़ी लगाने की आवश्यकता है। क्या यह बातें वेदानुकूल ही हैं।

(ह०) व्रजमोहन झा।

सनातनधर्म (द्वितीय वार)

वेद-पुराण को ईश्वरप्रोक्त व विराट् का अनुगामी कहता है-इस पर प्रमाण के जो मन्त्र मैंने दिए थे, उनका आपने स्पर्श भी नहीं किया है। वादी के प्रमाण का प्रतिवादी उत्तर न दे, तो ऐसे स्थल में 'अप्रतिभा' निग्रह स्थान होता है-जो कि आप पर लग चुका है। पुराण की एक एक कथा पर तो विचार इतने समय में होजाना असम्भव ही है, इसलिये समष्टिरूप से

पुराण की वेदानुकूलता पर ही विचार होना चाहिये था, उस विषय को ही आप हटाकर दूसरे विशेष विषय पर जा रहे हैं। इसलिये विषयान्तर रूप निग्रह स्थान भी प्राप्त हो गया।

पुराण को वेदविरुद्ध दिखाने की आपने प्रतिज्ञा की है, किन्तु आप की लिखी कथायें कौन से मन्त्रों से विरुद्ध हैं--यह आपने नहीं लिखा। आप की प्रतिज्ञा मात्र से कैसे वेदविरुद्ध मान लिया जाय। संभव असंभव पर विचार की आवश्यकता ही इस समय नहीं है, विचार वैदिकता या अवैदिकता का है। इसके लिए वेद प्रमाण देकर जब तक आप विरोध न दिखलावेंगे इन कथाओं के लिख देने से कुछ न होगा। मनुष्य की बुद्धि पर संभव असंभव का निर्णय नहीं हो सकता, इसलिये वैदिक अवैदिक का ही विचार मुख्य रहना चाहिये।

पुराणों की जो कथायें आपने लिखी हैं, उनका पूरा पता भी नहीं दिया गया है जिसके विना आपका पूर्व पक्ष ही प्रामाणिक नहीं हो सकता। विनय यही है कि जो कुछ कहा या लिखा जाय प्रमाण सहित हो, जिससे कि वाद निर्णय पर पहुंच सके।

(ह०) गिरिधर शर्मा

आर्यसमाज (द्वितीय वार)

प्रथम आपने पुराणों को वेद के अनुकूल सिद्ध करना स्वीकार कर लिया है अब हम अश्लील विषयों को पुराणों से प्रकट करते हैं जिनको कि वेदानुकूल सिद्ध करना आपका काम है। अब कहिये निग्रह स्थान किस को प्राप्त हुआ। केवल पुराण शब्द से १८ पुराणों को गृहण करना वाक्छल है उस स्थान पर पुराण शब्द जो आया है उसका सम्बन्ध पुराण विद्या से है न कि इन अष्टादश पुराणों से। आपने इन पुराणों को प्रामाण्य सिद्ध करने के लिये कोई वेद मंत्र नहीं दिया। और विषयान्तर में जाने की आप की आशङ्का व्यर्थ है जब कि हम पुराणों ही में वर्णित विषय को आपके सामने रख रहे हैं। आपका कर्तव्य है कि उन को वेदानुकूल सिद्ध करें। हमारे पहिले विषय को आपने छुआ भी नहीं। आप इस अश्लीलता से क्यों भय खाते हैं-फिर भी देखिये—

विष्णु जालन्धरं गत्वा दैत्यस्य पुटभेदनम्।

पातिव्रतस्य भंगाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥

रुद्रसंहिता युद्धखंड अध्याय २२ श्लोक २

पुनः वृन्दोवाच ।

धिक् तदेवं हरे शीलं परदाराऽभिगामिनः ।

ज्ञातोऽसि त्वं मयासम्यक् मायी प्रत्यक्षतापसः ॥

इस प्रकार परदारगामी कैसा स्पष्ट बताया है । कहिये यह चरित्र आप के भगवान का पुराण वर्णित वेद प्रतिपाद्य है । पुनः

रे महाधम दैत्यारे परधर्म विदूषक ।

गृह्णीष्व शठ मद्दत्तं शापं सर्वविषोल्बणम् ॥

यह शाप विष्णु को महाधम कहके वृन्दा नें दिया—और कहा कि यही राक्षस तुम्हारी भार्य्या को हरण करेंगे । कहिये क्या आप के भगवान का यही कर्तव्य है । आप को इन बातों को सिद्ध करना ही चाहिये । इनको छिपाने से आप का मत वेदानुकूल कैसे सिद्ध होगा । आप स्वयं विषय को छोड़ कर प्रतिज्ञा संन्यास निग्रह स्थान को प्राप्त होते हैं । इस समय आप से प्रार्थना है कि इन कथाओं की सङ्गति वेद से मिलावें ।

(ह०) व्रजमोहन झा

सनातनधर्म (तृतीय वार)

वेदानुकूलता के विचार में मन्त्रों का अर्थ हो जाना सब से प्रथम आवश्यक है, जिसका कि अर्थ करके अप्रतिभानिग्रहस्थान से बचना आप अब भी नहीं चाहते। मैं फिर कहता हूं कि आप पहिले पुराण सामान्य पर विचार करके तब विशेष कथाओं पर चलें। सामान्य सिद्धि के बिना विशेष पर विवाद करना शास्त्र विरुद्ध है, और शास्त्रविरुद्धवाद से कभी लाभ न होगा। आप वाद करना चाहते हैं तो शास्त्रमर्यादा का अवलम्बन कीजिये। दो चार कथायें सुना कर आप सर्व साधारण पर बुरा प्रभाव डालना चाहते हैं—यह चेष्टा कभी सफल नहीं हो सकती। बुद्धिमान् समझ रहे हैं कि आप प्रमाण रूप मन्त्र के अर्थ से कितनी दूर बचते हैं। आपने पुराण शब्द का अर्थ लिखा है, पुराण विद्या। किन्तु वह पुराण विद्या कौनसी है, और उसके प्रतिपादक कौन से ग्रन्थ वेद को प्रमाण रूप से स्वीकृत हैं—यह आप को बताना होगा। ये अष्टादश पुराण नहीं तो वे कौन से पुराण हैं—जिन का जिक्र मन्त्र और ब्राह्मण में आया है?

प्रतिज्ञा संन्यास निग्रह स्थान का लक्षण तो कृपाकर बता दीजिये। वह मुझ पर कैसे लगा, मैंने कौनसी प्रतिज्ञा छोड़ी। यदि न बता सकेंगे तो बिना निग्रह स्थान के निग्रह स्थान कहने से अननुयोज्यानुयोग निग्रह स्थान आप पर आवेगा।

अश्लीलता का विचार आप क्यों कर रहे हैं ? क्या यह विचार का विषय है ? और क्या वेदों में अश्लीलता नहीं है। क्या आप उसे खुलवाना चाहते हैं।

महाशय ! विचार वैदिकता का है, वेदविरुद्ध सिद्ध करने के लिये आप प्रमाण दीजिये। स्पष्ट लिखिये कि आप की लिखी कथायें कौन से मन्त्र से विरुद्ध पड़ती हैं। अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये आपको वेद विरोध दिखाना होगा, अन्यथा आप के लेख का प्रकृत विवाद से कोई सम्बन्ध नहीं माना जायगा।

(ह०) गिरिधर शर्मा।

आर्यसमाज (तृतीय वार)

हम पहिले ही आपको बतला चुके हैं कि पुराण विद्या से १८ पुराणों का कोई सम्बन्ध नहीं किन्तु पुराण विद्या से तात्पर्य

सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित आदि का ज्ञान प्राप्त करने कराने से है जो ब्राह्मणादिकों में है। अब आप का यह कर्तव्य था कि इन १८ पुराणों की प्रामाणिकता वेदों से सिद्ध करते जब तक आप यह १८ पुराणों का वर्णन वेद में न दिखा दें तब तक आप अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ देने के कारण प्रतिज्ञा संन्यास नामक निग्रह स्थान में हैं।

पुराणों की कथाओं से आप भयभीत होते हैं और स्वयं स्वीकार करते हैं कि उनका प्रभाव पब्लिक पर बुरा पड़ता है कहिये इतने पर भी आप का यह साहस कि पुराण वेदानुकूल हैं कहाँ तक ठीक है। क्या इन अश्लील कथाओं के अनुसार ही वेदों की शिक्षा भी मानते हैं। क्या आप वेदों में भी अश्लील बात दिखा सकते हैं या मानते हैं। आप को हमने जितनी कथाओं का प्रमाण दिया है आप उन में किसी एक का भी स्पर्श क्यों नहीं करते। आपने प्रतिज्ञा संन्यास के लक्षण पूछे हैं सो लीजिये "पक्ष प्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञा संन्यासः" कहिये कैसा शुद्ध प्रतिज्ञा संन्यास आप पर आरोपित हुआ।

आप ने हमारी बताई अश्लील एक कथा को भी वेदों में नहीं बताया। पुनः यह कथायें वेदत्रयी अन्तर्गत कैसे समझी जायं।

गुरु पत्नी गमन—ईश्वर का व्यभिचार कर्म्म वेदानुकूल होना त्रिकाल में भी संभव नहीं।

(ह०) ब्रजमोहन झा।

सनातनधर्म (चतुर्थ वार

आपने पुराण विद्या का वर्णन करते हुये लिखा है कि सर्ग प्रतिसर्ग, आदि पुराण विद्या है। और वह ब्राह्मण में है। महाशय। सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' श्लोक तो पुराण का है, उसके आधार पर तो मन्त्रार्थ लगा कर आप स्पष्ट इन्हीं पुराणों को प्रमाण मान चुके। दूसरे-ब्राह्मण जिसे आपके सिद्धान्त में ऋषि-प्रोक्त माना जाता है, उसका जिक्र ईश्वरप्रोक्त अनादि वेद में कैसे आया? क्या ब्राह्मण का जिक्र मन्त्र में मानना आपका सिद्धांत विरुद्ध नहीं है? कृपा कर मन में ही सोचिये। स्पष्ट सिद्ध है कि आप मन्त्रों का कुछ भी अर्थ अभी तक नहीं कर सके, और इससे पुराणों की वेदानुकूलता आपके मौन से ही सिद्ध हो चुकी। आप अश्लीलता पर बहुत अधिक बल दे रहे हैं—किन्तु

'पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्' (ऋग्वेद १० । ६१)

'मातुर्दिधिषुमब्रुवं स्वसुर्जारं शृणोतुनः' ६-५५

'स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्'

इत्यादि, मन्त्रों में क्या अश्लीलता नहीं है, जहां माता और भगिनी तक के लिये बुरे शब्द लिखे हैं। इन मन्त्रों का आप कुछ आशय लगावें, तो पुराणों की कथाओं का भी आशय पुराणों में ही लगाया हुआ है-उसे देख लीजिये। कथन का ढंग दोनों ही जगह अश्लील है, और आशय दोनों ही का उत्तम है—फिर एक जगह शंका क्यों?

फिर श्रीस्वामी दयानन्दजी का सालममिश्री वाला नुसखा, आंख और नाक का सामने करना, स्थूल गुदा से सर्पों काग्रहण-

इमं ते उपस्थं मधुना संसृजामि।

संस्कार विधि। १२८

इत्यादि लेख क्या अश्लीलता की पराकाष्ठा नहीं हैं, और क्या पंजाब की अदालत सत्यार्थप्रकाश को स्पष्ट अश्लील नहीं मान चुकी? क्या इसकी खबर आप को नहीं है? फिर भी आप अश्लीलता का दावा पुराणों पर करते हैं—यह आश्चर्य है।

स्वामी दयानन्दजी मन्त्रानुसार ही सोलेतूर के विज्ञापन में महाभारत आदि को ईश्वरकृत मान चुके हैं, और सत्यार्थप्रकाश

में भी युधिष्ठिर से पहिले का इतिहास पुराणों से लेना मानते हैं। आप लोग भी इतिहास के लिये पुराणों को ही अब भी लिया करते हैं। फिर पुराण की प्रामाणिकता आप को ही स्पष्ट स्वीकृत है।

आपने मन्त्रार्थ कुछ नहीं किया है और अब लास्ट टर्न (अन्तिम पत्र) में किया हुआ भी व्यर्थ होगा। इससे मेरे दिये हुये मन्त्र ब्राह्मण से पुराण प्रामाण्य सिद्ध हो गया है। मैंने प्रतिज्ञा कोई नहीं छोड़ी है इससे आपका लक्षण मुझ पर नहीं घटता, आप समय समय पर ३ निग्रह स्थानों से निगृहीत हो चुके हैं।

(ह०) गिरिधर शर्मा।

आर्यसमाज (चतुर्थ वार)

आपने लिखा है कि सर्ग प्रतिसर्ग वाला श्लोक पुराणों का है, इससे आपका क्या A मतलब सिद्ध हुआ। हम उस विद्या को

A जी! अभी आप ने नहीं समझा, सब कुछ तो सिद्ध हो गया। सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पुराण विद्या है-यह कहीं मन्त्र में तो लिखा नहीं, पुराण का ही यह वचन है, और पुराण वचन

तो मानते B ही हैं। इतिहास का विषय पुराणों ही से नहीं लिया जाता उसका वर्णन राज तरंगिणी C आदि ग्रन्थों में भी है, और ब्राह्मणादिकों D में भी है। अष्टादश पुराणोंका वर्णन जब आप किसी वेद

के आधर पर आप मन्त्र का अर्थ लगा रहे हैं, फिर पुराण की वैदिकता क्या अब भी सिद्ध न हुई ?

B ईश्वर भला करै आपका, यही मनवाना शास्त्रार्थ का उद्देश्य था। प्रतिसर्ग आदि विद्या सिवाय पुराणों के आप शृङ्खलाबद्ध कहीं भी नहीं दिखा सकते। क्या त्रिकाल में भी कोई समाजी पण्डित मन्वन्तर और वंशानुचरित मन्त्र या ब्राह्मण में दिखा सकता है ? तब इन विद्याओं को मानने पर इन्हीं पुराणों की शरण में आपको स्पष्ट आना पड़ा। 'जादू वो जो शिर पर चढ़ कर बोले।

C क्या राजतरंगिणी में युधिष्ठिर से पूर्व का इतिहास है? राजतरङ्गिणी का नाम ही कहीं सुन लिया है, या कभी देखा भी है ? बात थी युधिष्ठिर से प्राचीन इतिहास की, ले आये राजतरङ्गिणी को ! बलिहारी इस बुद्धि को।

D जिन भीष्म, राम, आदि की कथायें अपने पूर्वजों का गौरव बताने को कही जाती हैं—उनका इतिहास कहां, क्या

मन्त्र में नहीं बतला सकते, तब हम अर्थ क्या E करें। हम अश्लीलता पर बहुत बल देते हैं—यह बिलकुल यथार्थ है और यही मुख्य F विषय है। वेद के मन्त्र का न तो आपने पता G ही दिया और न उसका अर्थ ही किया। ऐसी दशा में केवल

ब्राह्मण में है, जरा किसी से पूछिये तो! यों ही किसी पुस्तक का नाम ही ले देते हो!

E अर्थ आप क्या करें—कर ही नहीं सकते, बिलकुल ठीक है। महाशय जी! पुराण का नाम जो मंत्र में आया था, उसका तो अर्थ किया होता, अष्टादश की बात पीछे होती रहती मन्त्रार्थ पर मौन रह कर ही तो आपने अपनी सब कलई खोल दी।

F अच्छा! क्या आप शास्त्रार्थ के अन्त तक विषय का धोखा ही खाते रहे। मुख्य विषय वैदिकता था या अश्लीलता? आप तो यही सोचते हैं कि वह न चल सका तो यही सही, इस तरह कोने ताकने से कभी कोई मत सिद्ध हो सकता है? अपना नोटिस तो पढ़ा होता। शास्त्रार्थ पुराणों की वैदिकता का निर्दिष्ट था—और आप कहते हैं—अश्लीलता ही मुख्य विषय है। वाह साहब वाह!

G जी! पता नहीं मालूम था तो पूछ ही लिया होता, इस

वेद मन्त्र में जार आदि शब्द आ जाने से कुछ थोड़े ही सिद्ध हो जायगा। इसके आगे आप स्वामी जी के वैद्यक I संबन्धी विषय में दोष लगाते हैं। जहां कि शरीर आदि के सूघा K रखने का विषय है। यह तो ठीक ही है। क्या आप के

हो पर जवाब क्यों टाल दिया? जवाब कुछ हो भी। अर्थ तो कर ही दिया था, आपने पढ़ा नहीं?

H नहीं साहब, बिलकुल नहीं। आप के पास तो जार शब्द का अर्थ साक्षात् आना चाहिये, तब कुछ सिद्ध हो सके! अजी ज़रा होश संभालिये, वेद में तो शब्द ही आया करते हैं अर्थ तो घर में होगा तो मिल सकेगा।

I वाह स्वामीजी इस सालममिश्री के नुसखे के ही वैद्य-थे, या और भी कोई वैद्यक का नुसखा उन्होंने बतलाया है?

K जी! यह सूधा रखने का विषय किस मौके का है—यह तो ज़रा खोला होता, फिर हम 'वीर्याकर्षण विधि' में आप की परीक्षा करते। जिस संन्यासी को यह 'वेश्या शिक्षा' लिखने में ज़रा भी लज्जा न आई-उसके ग्रन्थों को अश्लीलता से बचाने का आपका इतना बड़ा साहस?

नितम्बों L से नितम्बों का सम्मेलन किया जाता है। धन्य है इस सभ्यता M पर। आप सर्पों को क्या मुंह से N पकड़ते हैं। यदि स्वामीजी ने उनको गुदा की ओर O से पकड़ना लिखा तो क्या बुरा किया। कहीं आप P पकड़ न बैठियेगा।

L पुराणों को अश्लील बताने वालों का यह वाक्-व्यवहार ज़रा दर्शनीय है। ऐसे नितम्बवान् महाशयों के नितम्ब-सम्मेलन का पाठ्य प्रकट करने पर सभ्य पुरुषों को चुप ही रहना चाहिये।

M सभ्यता आपकी, और धन्यवाद हमें! 'उलटा चोर का कोतवाल को डांटना' इसे ही कहते हैं।

N कभी नहीं, हमें न सांप पकड़ने की आदत है, न आवश्यकता है। जिनके आचार्य ने यह सपेरापन सिखाया हो, वे ही मुंह......से पकड़ कर दिखावें;

O यही तो आप धोखा दे रहे हैं, गुदा की ओर से नहीं, गुदा से पकड़ना आप के स्वामीजी बताते हैं। आप स्वामीजी की आज्ञा के उलटे पलटे अर्थ न लगावें, उनकी आज्ञा के अनुसार ही अभ्यास करें।

P नहीं आप डरिये नहीं यह काम आपके लिये ही रिजर्व्ड है।

आपने अभियोग का जो जिकर किया है, सो क्या कोई वेद प्रमाण P है। आप पं० गोपीनाथ जी R के अभियोग को ही देखें और अश्लीलता दिखावें। जब आप एक भी पुराण की कथा अर्थात् व्यभिचार और कुकर्मों मकान को वेद में नहीं दिखा

P जी हां, आपने जो जो कुछ कहा है वह तो सब वेद ही कहा है न ? वेद मन्त्र का तो आपने चारों चार में नाम तक लेना उचित न समझा, न दूसरे पक्ष के प्रश्नों पर कुछ कहा, केवल इधर उधर की बातें बनाते रहे। और हमने अदालत का फैसला दिखाया तो पूछते हैं—क्या यह वेद है ? क्या आप को अदालत के फैसले पर भी विश्वास नहीं होता, इस दुराग्रह का कोई ठिकाना है ? महाशय ! पुराणों को केवल आप ही अश्लील कह रहे हैं—और आप के धर्मग्रन्थ को खुले मैदान सरकारी अदालतें अश्लील कह रही हैं—इस तारतम्य को कभी एकांत में बैठ कर सोचिये।

R वाह क्या कहना, कहां धर्मग्रन्थ पर अदालत की राय, और कहां एक व्यक्ति का मुकद्दमा। दोनों को बराबर तोल डाला ? पं० गोपीनाथजी क्या कोई पुराण है, जिनका जिक्र आप यहां शास्त्रार्थ में ले आये।

सकते S तो पुराण वेदानुकूल T नहीं हैं। *

(ह०) ब्रजमोहन झा।

S गुरुपत्नी से भी बढ़ कर माता भगिनी और पुत्री की बात दिखाई थी उसका तो कुछ उत्तर देते। जब आप देखते हुये भी नहीं देखते, या देखने की शक्ति ही नहीं रखते तो ब्रह्मा भी आप को नहीं दिखा सकता, एक पण्डित तो क्या?

T जी नहीं काहे को हों, आप जैसे दश पांच शास्त्रार्थ करने वाले तैयार हो गये तो वेदानुकूलता का नाम निशान भी मिट जायगा। धन्य है आपको!

* यहां पर शास्त्रार्थ समाप्त हो गया था और यहीं पर ब्रजमोहन झा के अन्तिम हस्ताक्षर भी हैं परन्तु फिर भी आर्यसमाजियों के स्वभावानुसार शिवशंकरलाल मिश्र ने यहां पर २० पंक्ति का मजमून अपनी ओर से बढ़ा कर छपाया है! इससे पता चलता है कि समाजी पुरुष स्वामी के प्रथम नियम का कितना प्रतिपाल करते हैं।

श्रीहरिः

आर्यसमाज का घोर पराजय

एक शास्त्रार्थ में २१ बार हार।

जो सज्जन संस्कृत के विद्वान हैं और जो शास्त्रार्थ की प्रणाली को जानते हैं। उन्हें समझाने के लिये हमको एक भी अक्षर लिखने की आवश्यकता नहीं। वे शास्त्रार्थ को देखते ही अवलोकन मात्र से यथेष्ट समझ जावेंगे कि इस शास्त्रार्थ में किसका जय और किस का पराजय हुआ।

किन्तु जिन सज्जनों को इसका कभी काम नहीं पड़ा और रीति बतलाने से वे समझ सकते हैं उनको जय और पराजय समझने के लिये नियम बतला देना और कुछ दिग्दर्शन करा देना ही काफी है। इतने से फिर वे आप ही समझ लेंगे कि वास्तव में यह शास्त्रार्थ किस नतीजे पर पहुंचा।

नियम

(१) नियम यह है कि वादी ने जो प्रमाण आगे रक्खा है उसका ठीक उत्तर दिये बिना ही प्रतिवादी यदि आगे बढ़ जावे तो प्रतिवादी का पराजय हो गया।

(२) जिस विषय पर शास्त्रार्थ होना निश्चय हो चुका है या जिस विषय पर शास्त्रार्थ आरंभ हुआ है। उसको छोड़ जो पक्ष विषयान्तर में जावेगा वह निग्रह स्थान (पराजय) में फंस जावेगा।

(३) यदि शास्त्रार्थ के किसी प्रमाण पर कोई पक्ष अपनी असावधानी या कमजोरी से मौनता धारण करले या अप्रयोजनीय विषय को आगे रक्खे तो उसका पराजय हो गया;

(४) जिस प्रमाण के देने से प्रमाण देनेवाले का कोई सिद्धान्त कटता हो तो उसके लिए वह पराजय का स्थान है।

(५) वह प्रमाण कि जिसको दूसरा पक्ष न मानता हो पराजय का स्थान है। आदि २ नियम हैं।

इन पांचो नियमों को याद रखते हुए जो सज्जन इस शास्त्रार्थ का विचार करेंगे वे ठीक आशय पर पहुंच जावेंगे। जो उपरोक्त रीति से शास्त्रार्थ का फल जानना चाहें वे प्रथम

किसी पक्ष की कोई एक बात (प्रमाण) का अवलम्बन करें। फिर आगे देखें कि दूसरे पक्ष ने इसके ऊपर क्या उत्तर दिया। फिर देखें कि इस उत्तर को प्रथम पक्ष कैसे काटता है। इसी प्रकार चारो पत्र देख जावें। जिस स्थान में जिसका उत्तर कम जोर हो या उत्तर का अभाव हो उस स्थान में उसी का पराजय समझें। इसी प्रणाली से दोनों पक्षों के प्रत्येक प्रमाण का विचार करते हुए शास्त्रार्थ का फल पा सकेंगे। हमें आशा है कि ऐसे सज्जन स्वतः विचार करेंगे और हमारे विचार के भरोसे न रहेंगे।

तृतीय सज्जन वे हैं कि जो इस प्रकार से विचार तो नहीं कर सकते यदि कोई ऐसा विचार करके आगे रख दे तो समझ सकते हैं। उनके समझने के लिए हम सविस्तर विचार लिखते हैं। धर्मशास्त्रों में यह लेख है कि जो मनुष्य शास्त्रार्थ में छल कपट करता है वह दोषी है। हम इसको याद करके विचार पर बैठते हैं किन्तु फिर भी हम मनुष्य ही हैं इस कारण विचार में जो त्रुटि रह जावे उसको पाठक क्षमा करें।

हमारा जहां तक विचार है और शास्त्रार्थ जैसा हमारे चित्त में बैठा है उससे तो यही सिद्ध होता है कि इस शास्त्रार्थ में

आर्यसमाज का घोर पराजय हुआ और इसी एकही शास्त्रार्थ में आर्यसमाज २१ बार हारा है। हमारे चित्त में यह भी विचार उठता है कि यदि आर्यसमाज की तरफ से व्याकरणादि शास्त्रों का ज्ञाता कोई अन्य पुरुष शास्त्रार्थ करता तो आर्यसमाज इतना परास्त न होता जितना कि वर्तमान दशा में हुआ है। इस हार का विवरण हम नीचे लिखते हैं और पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे इसे ध्यान से पढ़ें—

(१) यह शास्त्रार्थ पुराणों की वैदिकता और अवैदिकता पर था। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, और सनातनधर्म की ओर से पुराणों की वैदिकता में अथर्ववेद के दो मन्त्र, और गोपथ की श्रुति प्रमाण में रक्खी गई। वेद के मंत्रों का अभिप्राय था कि पुराण वेदों की भांति अनादि और मान्य हैं। गोपथ की श्रुति से यह निकलता था कि पुराण ब्राह्मण ग्रन्थों से भिन्न हैं। आर्यसमाज ने इन तीनों पर कुछ भी उत्तर न दिया और पुराणों में असम्भव तथा अश्लीलता को प्रथम ही पत्र में सिद्ध करना आरम्भ कर दिया। वेदों के मन्त्र और ब्राह्मण की श्रुति का उत्तर दिए बिना ही आगे भाग जाना यह **आर्यसमाज का प्रथम पराजय है।**

(२) जिनको वेद मान्य बतलावे भला उन पर कभी कोई भी वैदिक पुरुष अश्लीलता का दोष लगा सकता है ? क्या ब्रजमोहन झा ईश्वर से भी अधिक ज्ञान रखते हैं कि ईश्वर ने तो पुराणों की अश्लीलता को न जाना और ब्रजमोहन झा ने जान लिया। जब वेद उनको मान्य कहता है तब तो सैकड़ों दोष रहने पर भी वैदिक लोगों की दृष्टि में वे मान्य ही रहेंगे। वेद के विरुद्ध आर्यसमाज के द्वारा आवाज का उठना नास्तिकता का प्रकट करनेवाला **यह द्वितीय पराजय आर्यसमाज के ऊपर आया।**

(३) फिर तृतीय पत्र में ब्रजमोहन झा ने बतलाया कि पुराण शब्द से वे अठारह पुराण नहीं लिये जाते! किन्तु वे लिये जाते हैं कि जिनमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित हों। इसके ऊपर पं० गिरिधराचार्य जी ने कहा कि सर्गादि पञ्चविद्याओं का ज्ञान भी तुमको उन्हीं अमान्य अठारह पुराणों ने कराया है जिनको आप आज भ्रष्ट बतलाते हो, और वह श्लोक यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ॥

जिन पुराणों को भ्रष्ट, अयोग्य और अमान्य सिद्ध करने के लिये आज आर्यसमाज शास्त्रार्थ पर खड़ा है उन्हीं पुराणों के एक श्लोक से ज्ञान लेकर सर्गादि पंचविद्या बतलाना अमान्य को मान लेना है। अतएव पुराणों की सत्यता अपने मुख से सिद्ध करना **आर्यसमाज का यह तृतीय पराजय है।**

(४) आर्यसमाज का छपवाया शास्त्रार्थ पढ़ने वाले यह भी कहेंगे कि ब्रजमोहन झा ने पंचविद्या बतलाने वाला श्लोक पुराण का नहीं दिया, किंतु शुक्र नीति का दिया है क्योंकि उन्होंने शास्त्रार्थ में शुक्र नीति का लिखा है। इसके ऊपर हमारा कथन यह है कि शुक्र नीति को आर्यसमाज प्रमाण नहीं मानता। जो ग्रन्थ प्रामाण्य ही नहीं उसका लेख इस भय से लेलेना कि हमारा पराजय न हो, सत्य से कोशों दूर भगाना है। स्वामी दयानन्दजी ने जो ग्रन्थ प्रमाण मे लिये हैं उनसे भिन्न शुक्र नीति को प्रमाण में लेना स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त को पैर के नीचे कुचलना है। यह आर्यसमाज के लिये भारी कलङ्क है। अस्तु, शास्त्रार्थ में अपने सिद्धान्त को काट देना **यह आर्यसमाज का चतुर्थ पराजय है!**

(५ कई एक मनुष्य यह कह बैठेंगे कि आर्यसमाज शुक्र नीति को प्रमाण नहीं मानता तो न माने किन्तु सनातनधर्म तो प्रमाण मानता है। इसके उत्तर में हम यह कहेंगे कि धार्मिक निर्णय में सनातनधर्म भी शुक्रनीति को प्रमाण नहीं मानता सनातनधर्म के प्रामाणिक ग्रन्थ जो धर्मशास्त्र ने वतलाये हैं वे ये हैं—

पुराणं न्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।

अर्थ—पुराण शब्द से पुराण और इतिहास, न्याय शब्द से गौतम और वैशेषिक, मीमांसा शब्द से दोनों पूर्व उत्तर मीमांसा, समस्त धर्मशास्त्र, और छः अङ्गों सहित चारो वेद, ये चौदह विद्या हैं। इन्हीं से धर्म का निर्णय होता है।

इनसे भिन्न ग्रन्थ धार्मिक निर्णय के लिये प्रमाण कोटि में नहीं हैं। और इनमें शुक्रनीति का ग्रहण नहीं। जो ग्रन्थ वादी और प्रतिवादी दोनों को प्रामाण्य नहीं उसको प्रमाण में रखना **यह आर्यसमाज का पञ्चम पराजय है।**

(६) सनातनधर्म की तरफ से यह पूछा गया वेद

ग्रन्थ कौन है कि जिनमें सर्गादि पञ्चविद्या हैं। इसके उत्तर में व्रजमोहन झा ने बतलाया कि ब्राह्मणादि ग्रन्थों और राजतरङ्गिणी में हैं। ऐसा मानने पर स्वामी दयानन्दजी के एक और सिद्धान्त का चकनाचूर हो गया।

वह इस प्रकार समझिये, स्वामी दयानन्द ने यह लिखा है कि जिस ग्रन्थ में जिसका वर्णन आवे वह ग्रन्थ उसके बाद का बना समझो। सर्गादि पञ्चविद्या ब्राह्मण और राजतरंगिणी इतिहास में हैं। इसीसे इनका नाम पुराण है। और पुराणों का मान्य होना वेद ने लिखा है इसलिये ब्राह्मण ग्रन्थों और राजतरङ्गिणी के बाद वेद का बनना सिद्ध होगया। अब यातो वेद को नया समझो, या स्वामी दयानन्द के सिद्धांत को मिथ्या समझो। दोनों दोषों में से एक दोष बना ही रहेगा इस कारण आर्यसमाज का यह षष्ठ पराजय है।

व्रजमोहन झा जी शास्त्रार्थ क्या करते हैं बात बात में स्वामी दयानन्द जी के लेख को मिथ्या साबित करते हुये आर्यसमाजों को यह बतलाना चाहते हैं कि हम स्वामी दयानन्द से अधिक विद्वान् हैं। यदि दो चार शास्त्रार्थ इसी प्रकार के और हो जावें तो फिर स्वामी दयानन्द के तो समस्त ही सिद्धान्तों

का चकनाचूर हो जावे ? यह एक अयोग्य बात है कि सर्वथा संस्कृत शून्य आर्यसमाजी पुरुषों के द्वारा स्वामी दयानन्द के सिद्धांतों का अपमान हो। हम आर्यप्रतिनिधिसभा यू० पी० से प्रार्थना करते हैं कि वह स्वामीजी के लेख के अपमान को रोके और आगे को ऐसे नये रंगरूटों को शास्त्रार्थ में न भेजे।

(७) ब्राह्मण ग्रन्थों को आज तक किसी ने भी पुराणों के नाम से याद नहीं किया। न तो उनके ऊपर ही पुराण लिखा है और न उनके काण्ड की समाप्ति में। न ब्राह्मण में और न श्रुति के अंतमें। समस्त ब्राह्मण ग्रन्थों की समाप्ति में भी पुराण शब्द नहीं दिया गया। ब्राह्मण ग्रन्थों को छोड़ कर और भी किसी पुस्तक ने यह नहीं लिखा कि ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं। ब्रजमोहन झा जी ने ब्राह्मण ग्रन्थों को पुराण बतलाया है यह लेख सर्वथा प्रमाणशून्य और अमान्य है। जान बचाने के लिये प्रमाणशून्य मनमाना लेख लिखना **आर्य समाज का सतवां पराजय है।**

(८) पं० गिरिधराचार्य्य जी ने जो गोपथ ब्राह्मण की "इमे सर्वे वेदाः" श्रुति लिखी है इसमें ब्राह्मण ग्रन्थों से पुराणों को भिन्न लिखा है इसका उत्तर आर्यसमाज के किसी पत्रमें नहीं हुआ

अतएव **निस्सन्देह आर्यसमाज की यह आठवीं हार है।**

(९) गोपथ ब्राह्मण के विरुद्ध मनमानी बात उठा कर ब्राह्मणों को पुराण कहते हुये वेद की आज्ञा को न मानना, अपने पक्ष को प्रत्यक्ष हानि होते देख कर, ब्राह्मण के लेख का अपमान करना सच्ची नास्तिकता है इसलिये **यह समाज की नवीं हार है।**

आर्यसमाज रेलबाजार ने शास्त्रार्थ में गोपथ ब्राह्मण का अपमान करवाया है इस कारण यदि रेलबाजार आर्यसमाज अपने को वैदिकधर्मी और आस्तिक होने का दावा करता है तो उसको उचित है कि वह प्रायश्चित कर डाले।

(१०) वेदों में आये हुये पुराण शब्द से ब्रजमोहन झा ने राजतरङ्गिणी को पुराण माना है किन्तु उसके पुराण होने में कोई प्रमाण नहीं दिया, बिना प्रमाण की बात को उठा कर शास्त्रार्थ में केवल इस भय से रखना कि आज हमारी हार हो जावेगी अतः **यह आर्यसमाज की दशवीं हार है।**

फिर ब्राह्मणग्रन्थों में सर्गादि पञ्चविद्या भी नहीं। वे पञ्चविद्या हैं-सर्ग, ये प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशचरित्र। इन पांच विद्याओं में से ब्राह्मणों में कुछ थोड़ी सी सर्ग विद्या

तो मिलती है और बाकी की चार विद्यायें बिल्कुल नहीं मिलतीं। सर्ग विद्या में यह तो पता ब्राह्मण देते हैं कि जल से पृथ्वी बनी किन्तु यह पता ब्राह्मणों में नहीं चलता कि इस जगत का कारण सुवर्ण कान्ति वाला अग्निमय अण्ड जो सृष्टि के आदि में ईश्वर ने रचा था वह कितने दिन जल में निवास कर ठण्ढा होकर पृथ्वी बना।

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिसर्ग बिल्कुल नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थ इस बात को नहीं कह सकते कि झाड़ी औषधि (अन्न घास) वृक्ष, पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य, इनमें कौन किस से पहिले और कौन किस के बाद में उत्पन्न हुआ इसी का नाम विसर्ग है। और यह विसर्ग विद्या ब्राह्मणों में नहीं है। जो ब्राह्मण में नहीं है उसको हार के भय से जबरदस्ती मान बैठना इस चालाकी की कलई कब तक नहीं खुलेगी।

(११) फिर वंश के मानने पर आर्यसमाज का एक सिद्धान्त शुद्धि का चकनाचूर होगया। आर्यसमाज वंश मानता ही नहीं और ब्रजमोहन झा वंश मानते हैं। इस कारण वंश का मानना वर्तमान आर्यसमाज के विरुद्ध आवाज उठाना है। कल्पना करो कि एक अब्दुल रहमान मुसलमान को शुद्ध करके आर्य-

समाजी बनाया, उसको यज्ञोपवीत पहनाया और उसका नाम धर्म शिरोमणि भूमित्र शर्मा रक्खा। अब उसका विवाह किसी शुद्ध की हुई अथवा जन्म शुद्ध आर्य कन्या के साथ किया गया। उसके दो लड़के हुए- एक का नाम महर्षि गौतम, दूसरे का नाम स्वामी सर्वदानन्द रक्खा। अब ये दोनों बालक चन्द्रवंश के हुए या सूर्यवंश के? अत्रिवंश के या वसिष्ठवंश के? इनके वंश का पता आर्य प्रतिनिधि पञ्जाब को लगाना होगा क्योंकि वह इस काम में दक्ष है और मुसलमान को ब्राह्मण बना देने वाली अधिक मशीनें उसी के यहां हैं। इस बात को प्रत्येक मनुष्य जानता है कि मशीनों से बने ब्राह्मण का कोई वंश नहीं। जब आर्यों के यहाँ वंश है ही नहीं तो हार के भय से वंश मान कर आर्यसमाज के सिद्धान्त 'शुद्धि' को पैरों के नीचे कुचलना

यह आर्यसमाज की ग्यारहवीं हार है।

ब्रजमोहन झा ने सनातनधर्म के साथ शास्त्रार्थ क्या ठाना है आर्यसमाज के प्रत्येक सिद्धान्त को मिथ्या सिद्ध करने का ठेका ही ले लिया है।

फिर ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्वन्तरों का भी पता नहीं कि कितने मनु भुगत गये, इस कल्प में आगे को कितने भोगेंगे, एक मनु

कितने दिन रहता है, इस कल्प के समस्त मनुओं के कौन कौन नाम हैं, और वे मनु क्रम २ से किस २ के पुत्र हैं। प्रत्येक मनु के ऋषि और देवता तथा इन्द्र आदि के क्या २ नाम हैं। आदि आदि मन्वन्तर की किसी भी बात का पता ब्राह्मण देते नहीं। इतना न होने पर भी ब्राह्मणों में मन्वन्तरों का बतलाना यह धींगा धींगी आर्यसमाज की विद्वत्ता को प्रकट करती है या अज्ञता को? क्या इसके ऊपर कोई प्रतिनिधि सभा विचार कर सभा के शास्त्रार्थ में मिथ्या भाषण का प्रायश्चित्त ब्रजमोहन झा को बतलावेगी? या झा जी सर्वदा के लिये आर्यसमाज में मिथ्यावादी उपदेशक के नाम से ही प्रसिद्ध रहेंगे?

फिर ब्राह्मणग्रन्थों में वंशों का चरित्र भी नहीं। न तो उनमें यह लिखा है कि हरिश्चन्द्र ऐसा था और मोरध्वज वैसा। जब कि किसी भी वंश का चरित्र ब्राह्मणों में नहीं है तो फिर जबरदस्ती से मान बैठना शास्त्रार्थ के पराजय हो जाने के भय से अनधिकार चेष्टा करना नहीं तो और क्या है? क्या आगे को भी आर्यसमाज अनधिकार चेष्टा करने वाले को ही शास्त्रार्थ में खड़ा करेगी? जो विषय ब्राह्मणों में नहीं उनको शास्त्रार्थ में बतलाना और अन्त में कलई खुलजाना क्या इसके ऊपर आर्यसमाज रेलबाजार को कुछ भी लज्जा न होगी!

(१२) ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्गादिपञ्चविद्याओं में से किसी का भी न होना, और शास्त्रार्थ गिर जाने के भय से जबरदस्ती से उसे मान बैठना, सत्यता का पक्ष छोड़ कर शास्त्रार्थ में छल करना और फिर कही हुई बात को सिद्ध न कर सकना

यह आर्यसमाज की बारहवीं हार है ।

(१३) स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि ब्राह्मणादि ग्रन्थ वेदानुकूल होने से हमको प्रमाण हैं । ब्रज-मोहन झा स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त को पददलित करते हुए बिना ही वेदों की अनुकूलता के ब्राह्मण ग्रन्थों को प्रमाण मान उनसे सर्गादिपञ्चविद्या का ग्रहण करते हैं । बार बार स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तों को मिथ्या सिद्ध करना, आर्यसमाज के समस्त सिद्धान्त झूठे बनाने में उद्योग करना,

यह आर्यसमाज की तेरहवीं हार है ।

(१४) जब कि स्वामी दयानन्दजी यह कहते हैं कि वेदों की अनुकूलता पर ब्राह्मण प्रमाण हैं तो फिर बिना अनुकूलता का निश्चय किये ब्राह्मणों को मान बैठना क्या अनधिकार चेष्टा नहीं है ? यदि ब्रजमोहन झा यह कहें कि हमने तो वेदों की अनुकूलता मिला ली थी तो फिर वे हम को बतलावें कि सर्ग,

प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशचरित किस वेद में लिखे हैं? वेद के किस मन्त्र से सर्गादि विद्या जानी जाती है? यदि ये पांचों वेद में नहीं हैं तो फिर अनुकूलता कैसी? और यदि हैं तो फिर स्वामी दयानन्दजी का वह सिद्धान्त कट जावेगा कि वेदों में किसी का इतिहास नहीं। अब तो आप को स्वामीजी का एक सिद्धान्त अवश्य त्यागना पड़ेगा। व्रजमोहन झा इस के ऊपर क्या उत्तर रखते हैं?

यदि व्रजमोहन झा यह कहें कि वेद जिसका खण्डन करदे केवल वही प्रतिकूलता है, और जिस पर वेद कुछ न कहे वह अनुकूलता है। ऐसा मानने पर दोष यह है कि यदि कोई आर्य-समाजी नमाज पढ़ने लगे, रोजे रखने लगे, तो फिर उसका यह कार्य भी वेदानुकूल हो जावेगा। जिस समय उस आर्यसमाजी से यह कहा जायेगा कि आप यह काम क्यों करते हो तो वह कह देगा कि वेदानुकूल है इस कारण करता हूं। इसके उत्तर में उससे कहा जावे कि यह काम वेदानुकूल नहीं है तब वह जवाब देगा कि वेद में इसका खंडन दिखलाओ, इसका खण्डन वेद में है नहीं। वेद में इसका खण्डन न होने से इसकी वेदानुकूलता रहेगी इसका आर्यसमाज के पास क्या जवाब है? ब्राह्मण

वेदानुकूल हैं या प्रतिकूल इसका निर्णय किये विना ही जो व्रज-मोहन झा ने ब्राह्मणों को प्रमाण माना है **यह आर्यसमाज की चौदहवीं हार है।**

(१५) राजतरङ्गिणी इतिहास में केवल इतिहास है। उसमें सर्गादि चार प्रकार की विद्यायें बिलकुल नहीं हैं। जबरदस्ती से राजतरङ्गिणी में सर्गादि मान बैठना **यह आर्यसमाज की पन्द्रहवीं हार है।**

(१६) राजतरङ्गिणी इतिहास को आज तक व्रजमोहन झा ने आंख से नहीं देखा होगा, केवल नाम सुना है। आंख से न देखना और जबरदस्ती से पुस्तक को प्रमाण मान लेना, यह हमारी धार्मिक पुस्तक है ऐसा लिख देना, एक प्रकार की कमजोरी है। फिर राजा युधिष्ठिर को आदि रख इसके बाद का इतिहास उस पुस्तक में है। युधिष्ठिर से पहले का इतिहास किस पुस्तक से लेंगे इसके लिये स्वामी दयानन्द जी ने महाभारतादि से लेना लिखा है। स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्त को काटकर मनमानी चलाना आर्यसमाज के लिये लज्जा की बात है और यही **बड़ी पूरी सोलहवीं हार है।**

(१७) स्वामी दयानन्द जी इतिहास को "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" और "मोहन चन्द्रिका" से लेते हैं और आप राजतरङ्गिणी से। इसमें कुछ विरोध तो नहीं किन्तु राजतरङ्गिणी इतिहास वर्तमान समय का बना हुआ है। क्या वर्तमान समय के बने हुए पुस्तक को ब्रजमोहन झा के कहने पर आर्यसमाज अपना धार्मिक पुस्तक मान लेगा ? वर्तमान समय की बनी हुई पुस्तकों को धार्मिक पुस्तक मानना **यह आर्यसमाजकी सत्रहवीं हार है**

(१८) ब्रजमोहन झा ने पहिले ब्राह्मणादिक ग्रन्थों को पुराण बतलाया इसको आप शास्त्रार्थ पृष्ठ ३३ पंक्ति २० में देखें। फिर ब्रजमोहन झा ने पत्र तृतीय में कोष्ठ में वह लेख लिखा जो शास्त्रार्थ में नहीं लिखा था वह लेख यह है (अर्थात् उस पुराण विद्या का अवलम्बन करके ही ऋषियों ने ब्राह्मणादि को बनाया) इस लेख से साफ सिद्ध होता है कि पुराण विद्या के असली ग्रन्थ ब्राह्मणों से भिन्न हैं। फिर अपने छपाए शास्त्रार्थ पृष्ठ ३७ में टिप्पणी देकर लिखा कि "ब्राह्मणों में वर्णित विद्या बीजरूप से वेदों में थी"। यहां पर कभी तो ब्राह्मणों को पुराण बतलाते हैं, और कभी जिनमें सर्गादि हों उनको पुराण बतलाते हैं। कभी वेदको पुराण बतलाते हैं। किसी एक बात का निश्चय ब्रजमोहन झा

को खेद नहीं होता। एक बात पर स्थिर होकर एक उत्तर न देना कहीं पर कुछ कहीं पर कुछ लिखना **आर्यसमाज का अठारहवां पराजय है।**

ब्रजमोहन झा पृष्ठ २६ टिप्पणी में सायणभाष्य देकर लिखते हैं कि "पुरातनवृत्तान्तकथनरूपमाख्यानम्पुराणम्—यह सायणभाष्य है यदि सनातनधर्मी इसको देख लेते तो फिर अठारह पुराणों को पुराण न कहते"। सायणभाष्य की भाषा ब्रजमोहन झा ने अशुद्ध लिखी है। सायण के भाष्य का सीधा सीधा अर्थ यह है कि पुरातन वृत्तान्त कथन को पुराण कहते हैं। वह पुराणों में ही पाया जाता है। इस टिप्पणी में भी कुछ सार नहीं मालूम होता क्योंकि इन्होंने पुराणों को नवीन माना है। पुराण नवीन नहीं, किन्तु प्राचीन और ईश्वरकृत हैं।

जिस प्रकार संसार में वेद ज्ञान आया है उसी प्रकार पुराण ज्ञान आया है वेद ब्रह्मा के द्वारा संसार में आये हैं इसके लिये शास्त्र कहता है कि—

नकश्चिद्वेदकर्त्ता स्याद्वेदस्मर्त्ता स्वयम्भुवः।

अर्थात् वेद का स्मरण करने वाला ब्रह्मा है वेद का बनाने वाला कोई नहीं।

जिस प्रकार वेदज्ञान ब्रह्मा के द्वारा संसार में आया इसी प्रकार पुराणज्ञान आया। ब्रह्माने पुराण का उपदेश सनत्कुमार को किया, सनत्कुमार ने देवर्षि नारद को और नारद ने महर्षि व्यास को। नहीं मालूम ब्रजमोहन झा इसको नया क्यों कर समझते हैं। पृष्ठ ३५ में टिप्पणी देकर ब्रजमोहन झा लिखते हैं कि यदि पुराण शब्द से पुराणों का ग्रहण होगा तो वेद में इतिहास शब्द भी आया है उससे औरंगजेब आदि के इतिहास भी वेदानुकूल हो जावेंगे। इसके ऊपर इतना ही कहना योग्य है कि यदि ब्रजमोहन झा महाभारत से इतिहास का लक्षण जान जाते तो यह लेख लिखने का साहस कदापि न करते। जिस प्रकार केवल कथा ही को पुराण नहीं कहते किन्तु पुराणों में पञ्चविद्या का वर्णन है। इसी प्रकार इतिहास केवल राजा या सामान्य पुरुषों की कथा ही को नहीं कहते किन्तु पुराणों की भांति इस में भी कुछ और विद्या रहती है। जब तक वे न हों वैदिक दृष्टि से उसको इतिहास नहीं कह सकते। इसे वेदव्यासजी ने महाभारत में दिखलाया है। परन्तु ब्रजमोहन झा को इसका ज्ञान ही नहीं। जब औरंगजेब आदि के इतिहास वाली पुस्तकें वैदिक दृष्टि से इतिहास ही नहीं तो फिर वे वेदानुकूल कैसे हो जावेंगी?

ब्रजमोहन झा टिप्पणी में लिखते हैं कि "ऋचः सामानि" इस मंत्र का पता अशुद्ध लिखा। इसको हम मानतेहैं कि शीघ्रता के कारण पता अशुद्ध हो गया किंतु मंत्र तो वेद में मौजूद है पता अशुद्ध होने पर मंत्र तो वेद से निकलकर कहीं भाग न जावेगा।

हमने ब्रजमोहन झा के उन लेखों को भी दिखला दिया कि जो शास्त्रार्थ के समय इन्होंने नहीं लिखे थे किन्तु छपवाने के समय टिप्पणी में दिये हैं। पाठक विचार कर लेंगे कि ये सब निःसार हैं।

इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज इस प्रकार हारा कि एक शास्त्रार्थ में बार बार पराजय पागया। शास्त्रार्थ केवल इस विषय पर था कि पुराण वैदिक हैं या अवैदिक। इसमें जब सनातनधर्म की ओर से पुराणों को अनादि और ईश्वरीय ज्ञान वेद से सिद्ध कर दिया तब केवल इतना निर्णय करना था कि पुराण ग्रन्थ कौन हैं। यहां पर ब्रजमोहन झा ने सचाई को छोड़ कर इधर उधर चक्कर काटने आरम्भ किये किंतु "सचाई तो सचाई ही है" न तो ब्रजमोहन झा किसी एक स्थान में ठहरे और न कोई ऐसा प्रमाण ही देसके कि जिससे अठारह पुराणों से भिन्न पुस्तक पुराण ठहरें। इसका

फल यह हुआ कि—एक स्थान में पराजय होने के बदले आर्यस-माज स्थान २ पर पराजय को प्राप्त हुआ।

यह पराजय साधारण पराजय नहीं है किंतु इस प्रकार का पराजय है कि जो सर्वदा के लिये अमर रहेगा। सनातनधर्म की ओर से जो यह प्रश्न किया गया था कि वे कौन पुराण नामक पुस्तकें हैं कि जिन में सर्गादि पञ्चविद्याओं का वर्णन है ? ब्रजमो-हन झा इसका उत्तर न तो शास्त्रार्थ में दे सके हैं और न आगे को दे सकते हैं।

ब्रजमोहन झा ही क्या, यदि समस्त आर्यसमाजी मिलकर सात जन्म तक उद्योग करें। तो भी इन अठारह पुराणों से भिन्न पुराण नामक ग्रन्थ नहीं दिखला सकते।

यह क्या आर्यसमाज के लिये कम लज्जा की बात है कि जिस विषय का उस के पास कुछ भी प्रमाण न हो उस विषय में भी शास्त्रार्थ के लिये तैयार हो जाय। ऐसी दशा में हम आर्यसमाज को विद्वत्समाज कदापि नहीं कह सकते किंतु यदि उसे अज्ञसमाज के नाम से याद करें तो कोई अत्युक्ति भी न होगी।

हमारी प्रार्थना है कि जब तक आर्यसमाज के पास दूसरी

के कथन का सन्तोषदायक उत्तर न हो, शास्त्रार्थ के लिये न उठा करें। और हमें विश्वास है कि जब तक विचारशील आर्यसमाजें पुराण का ठीक उत्तर न सोच लेंगी तब तक अब पुराणों पर शास्त्रार्थ न कर वावेगी। यह सभी जानते हैं कि कमजोरी में कोई महत्व नहीं पाता किंतु सञ्चित कीर्ति का क्षय होता है।

आर्य प्रतिनिधि सभाओं से हमारी एक और प्रार्थना है कि व ऐसे नये मनुष्यों को शास्त्रार्थ के लिये न भेजा करें कि जो शास्त्रार्थ में अपने प्रसिद्ध होने के भाव को आगे रख समाज की क्षति करदें हमें विश्वास है कि हमारे इस मित्रतासूचक लेख को प्रतिनिधियाँ अवश्य स्वीकार करेंगी।

(१८) यदि इस शास्त्रार्थ में दोनों तरफ से विद्वान् वक्ता होते और श्रोता भी विद्वान् होते तो शास्त्रार्थ, शास्त्रार्थ के ढंग पर होता अथवा सभापति को फैसले का अधिकार होता तब शास्त्रार्थ अपने ढंग पर रहता। शास्त्रार्थ की प्रणाली यह है कि जब एक प्रश्न हो चुका तब उस एक ही प्रश्न का तोषदायक उत्तर दिया जावेगा जब तक उसका उत्तर पूरा न हो उत्तर देने वाला किसी अन्य प्रकरण को नहीं उठा सकता। यदि कोई

ऐसा करता है तो शास्त्रार्थ सुनने वाले उसको रोकते हुये यह समझाते हैं कि करते क्या हो इस प्रश्न पर तो तुम निग्रहस्थान (पराजय) में आगये। यदि वह इतने पर भी न माने तो उसे हारने की डिगरी दे दी जाती है।

यहां पर कोई रोकने वाला नहीं था इस कारण ब्रजमोहन झा इतस्ततः खूब दौड़े। जब इनको यह ज्ञान हुआ कि इतस्ततः भ्रमण से भी आर्यसमाज का ही पराजय होता है तब इन्होंने दो दोष और उठाये—एक तो यह कि पुराणों में "असम्भव" कथायें हैं। दूसरा यह कि इनमें अश्लील कथायें हैं। हमारी तरफ से उत्तर दिया गया कि सम्भव असम्भव का विचार मनुष्य की बुद्धि पर निर्णय नहीं हो सकता। वास्तव में है भी ऐसा ही, मनुष्य सम्भव असम्भव का विचार नहीं कर सकता। मनुष्य जिस बात को समझता है उसको तो सम्भव और जिसे समझने की बुद्धि नहीं उसे असम्भव कहने लगता है।

उदाहरण—जब तार नहीं था तब यदि कोई मनुष्य यह कहता कि एक लोहे का तार ऐसा बन सकता है कि जिसमें संसार के समाचार जा सकते हैं उस समय ऐसा कहने वाले मनुष्य को पागल कहते, और सब की बुद्धि यही निश्चय करती कि यह

असम्भव है। जब तार लग गया, खबरें आने जाने लग गईं तब संसार की बुद्धियों ने इसको सम्भव मान लिया।

इसके पश्चात् यदि कोई यह कहता कि एक तार का खम्भा इलाहाबाद में हो और दूसरा लन्दन में और बीच में तार बिलकुल न हो तब भी खबर आ जा सकती है। उस समय यह भी असम्भव माना जाता। किन्तु इसके निर्माण होने के पश्चात वह सम्भव माना जाने लगा। आजसे चार वर्ष पहिले यदि कोई मनुष्य यह कहता कि तोप का गोला ७५ मील जा सकता है ऐसा कहने वाले को शराबी होने की डिगरी दी जाती, और किसी की भी बुद्धि यह स्वीकार न करती कि ऐसा हो सकता है। किन्तु आज सब की बुद्धि उसे सम्भव बतलाती है। ईश्वर जाने वर्तमान काल के कितने असम्भव आगे को सम्भव माने जावेंगे।

यदि असम्भव दोष के कारण आर्यसमाज पुराण को छोड़ता है तब तो इसको वेद भी छोड़ने होंगे क्योंकि वेद में भी ऐसे अनेक मन्त्र आये हैं जिनके अर्थ वर्तमान समय के मनुष्यों की दृष्टि में असम्भव हैं। उदाहरण के लिये हम दो मन्त्र पाठकों के आगे रखते हैं। पढ़िये:-

सोदक्रामत् सासुरानागच्छत्

तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥ १

तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स

आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥२

तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥

तां पृथिवी वैन्यो धोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥

अथर्व० कां० ८ अनु० ५ सू० ११ म० १ । २ । १० । ११

अर्थ—वह गोरूप धरा पृथ्वी असुरों की तरफ को गई "इधर आओ" ऐसा कहके असुरों ने उसे बुलाया प्रह्लाद का पुत्र विरोचन वत्स (बछड़ा) बना और लोहे के पात्र में गोरूप पृथ्वी को दुहा १ । २ । फिर उस पृथ्वी का वैवस्वत मनु वत्स हुआ पृथिवी का पात्र बनाया और उस गोरूप पृथ्वी से वेन के पुत्र पृथु ने खेती और घास को दुहा १० । ११ ।

पृथ्वी का गोरूप धारण करना और उस का असुरों द्वारा और पृथु द्वारा दुहा जाना तथा प्रह्लाद के पुत्र विरोचन तथा विवस्वान् सूर्य के पुत्र मनु का बछड़ा बनना क्या वर्तमान मनुष्यों की दृष्टि में यह समस्त कथा असम्भव नहीं है ? निःसदेह अस-

म्भव है। यदि असम्भव है तो जिस असम्भव दोष से आर्यसमाज पुराणों को छोड़ता है उसी दोष से वेद भी छोड़दे।

जिसको असम्भव दोष कहते हैं वह समस्त धर्मों में पाया जाता है किन्तु इस दोष से न तो कोई धर्म ही छोड़ता है न सम्भव असम्भव का निर्णय ही मनुष्य-बुद्धि पर रक्खा गया है। स्वामी दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश में स्वतः लिखते हैं कि सृष्टिके आरम्भ में युवान २ पुरुष और युवति युवति स्त्रियां, जवान २ घोड़ी घोड़े, जवान २ गधी गधे उत्पन्न हुये। बिना मां बाप के ये निराकार के जोड़े कहां से आगये? पृथिवी फाड़ कर निकले या आसमान से टपके? अब क्यों नहीं टपकते? इस समय नौकरों का कष्ट हो रहा है, नौकर नहीं मिलते, यदि एक लाख टपक पड़ें तो नौकरों का कष्ट तो मिटे। जवान जवान स्त्री पुरुष, घोड़ी घोड़े, गधी गधे एकदम, आगये क्या यह असम्भव नहीं? इतना होने पर भी ब्रजमोहन झा ने असम्भव का अड़ंगा लगाया। किन्तु जब हमारी तरफ से यह उत्तर दिया गया कि सम्भव असम्भव का विचार मनुष्य की बुद्धि पर नहीं तब इसके ऊपर फिर आर्यसमाज की तरफ से कुछ भी उत्तर न

आया इतने पर ही मौनता हो गई यह आर्यसमाज का अठारहवां पराजय हुआ।

(१६) अब अश्लीलता की हालत देखिये—एक मनुष्य है उससे हमने पूछा कि क्या आप कृपाशंकर के पुत्र हैं, तो वह कहता है कि जी हां। और यदि हम उससे यह कह दें कि कृपाशंकरने आपकी माता के साथ में......ऐसा किया तो अश्लील हो गया। बात एक ही है कहने के ढंग में भेद है। यदि कहीं वेद और पुराण किसी विषय को पूर्ण विधि से वर्णन करदें तो क्या उस में कुछ दोष हो गया?

फिर आर्यसमाज भी अश्लीलता से भय खाता है कि जिस की धार्मिक पुस्तक सत्यार्थप्रकाश दूसरा 'कोक शास्त्र' दिखलाई देता है। देखिये सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास 'उसी दिन संस्कारविधि पुस्तकस्थविधि के अनुसार सब कर्म करके मध्य रात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सबके सामने पाणिग्रहण पूर्वक विवाह की विधि को पूरी कर एकान्त सेवन करें, पुरुष वीर्य स्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें। पुनः पृष्ठ ६४ पंक्ति २५—जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरुष दोनों

स्थिर और नासिका के सामने नासिका नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें, डिगें नहीं, पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्ति के समय अपान वायु को ऊपर खींचे, योनि को ऊपर सङ्कोच कर वीर्य को ऊपर **आकर्षण** करके गर्भाशय में स्थित करे'। क्या यहाँ पर अश्लीलता नहीं है कि घर के आदमी बाप, दादा, भाई, कुटुम्बी आदि २ सब बैठे रहें और उस समय वर देवता कन्या को पकड़ (घसीट कर) एक कोठरी में ले जावे और सत्यार्थप्रकाश की लिखी सम्पूर्ण क्रियायें करे! और वधू भी किसी प्रकार संकोच न करती हुई उत्तम रीति से आकर्षण करे! सत्यार्थप्रकाश का यह लेख तो कोक शास्त्र को भी मात कर रहा है। फिर अश्लीलता से ब्रजमोहन झा क्या सिद्ध किया चाहते हैं? हमारे यहां से कहा गया कि क्या आपको स्वामीजी का बतलाया सालम मिसरी का नुसखा भूल गया? इसके ऊपर आर्यसमाज की तरफ से फिर कोई उत्तर नहीं आया। उत्तर न होना ही हार है इस कारण **आर्यसमाज का यह उन्नीसवां पराजय है**।

(२०) फिर सत्यार्थप्रकाश के अश्लील होने में तो अदालतें

फैसला दे चुका है ज़रा उन फैसलों को भी पढ़िये—प्रथम प्रसंग वश इतना और बतलाते हैं कि सन् १८६२ में नियोग के खण्डन में एक सनातनधर्मी पण्डित ने एक पुस्तक लिखी, आर्यसमाज ने उसका कुछ भी उत्तर न देकर एक दम अदालत में दावा कर दिया। मजिस्ट्रेट दर्जे अव्वल पेशावर ने अपने फैसले में लिखा कि—

इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि दयानन्द की खास पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में व्यभिचार की तालीम मौजूद है मुद्दई खुद इस बात को स्वीकार करता है कि उन नियमों पर जिनमें विवाहिता स्त्री को अपने असली पति के जीते जी किसी अन्य विवाहित पुरुष के साथ भोग करने की आज्ञा है विश्वास रखता है यह रिवाज बेशुभह व्यभिचार है इस वास्ते यह जिकर करते हुये कि दयानन्द के शिष्य इन उपरोक्त नियमों पर विश्वास लाये हुये रस्म व्यभिचार का आरम्भ कर रहे हैं और अगर इन नियमों पर इनका विश्वास इसी तरह रहा तो

यह इस व्यभिचार को ज्यादा उन्नति देंगे मुद्दालय मे सचाई से एक प्रकट बात को प्रकाश किया है ।

इसकी अपील आर्यसमाजियों ने जज साहब बहादुर पेशावर के इजलास में की। साहब बहादुर मौसूफ ने अपील को खारिज करते हुए एक रिमार्क दिया है और वह यह है—

दयानन्द के नियम ऐसे नियम हैं कि वे हिन्दू धर्म तथा दूसरे मजहबों की निन्दा करते हैं और इस किताब (सत्यार्थप्रकाश) के चन्द हिस्से खुद भी निहायत फोहश (घृणित) हैं ।

ये दो अदालतों के फैसले हमारी तरफ से संक्षेप रूप में पेश हुए (शास्त्रार्थ पृष्ठ ३६ पंक्ति २-३) इसके ऊपर ब्रजमोहन झा ने कहा कि अभियोग का फैसला क्या वेद प्रमाण है ? बहुत ठीक ! यदि अदालतें सत्यार्थप्रकाश को अश्लील ठहरावें तब तो कुछ बात नहीं, अदालतों का फैसला कोई वेद प्रमाण नहीं, किन्तु जिस समय ब्रजमोहन झा पुराणों में अश्लीलता बतावें उस समय उनका कथन आर्यसमाज को वेद मंत्र दीखे ! अदालतों के फैसलों पर ब्रजमोहन झा ने कोई तोषदायक उत्तर नहीं दिया

इस कारण सत्यार्थप्रकाश की अश्लीलता **आर्यसमाज का बीसवां पराजय है ।**

(२१) जिस सम्प्रदाय के धार्मिक ग्रन्थों के अनेक स्थानों में अश्लीलता हो उसको कोई स्वत्व नहीं कि वह दूसरे के ग्रन्थोंपर अश्लीलता का दोष लगावे। निर्दोषी ही दोष लगा सकता है दूषित क्या दोष लगावेगा। फिर पं० गिरिधराचार्यजी ने यह भी दिखलाया कि यदि ऐसी अश्लीलता मानोगे तो वेद भी इससे शून्य नहीं। इसमें पं० गिरिधराचार्यजी ने "पिता यत्स्वां दुहितर मधिष्कन्" आदि २ मंत्र भी प्रमाण में दिये। इसके ऊपर चतुर्थ मंत्र में तो ब्रजमोहन झा ने लिख दिया कि आप ने वेद मंत्र का पता ही नहीं दिया किंतु टिप्पणी में आप लिखते हैं निरुक्त अध्याय ४ खण्ड २१ में लिखा है कि "तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः" इसके ऊपर हम और तो क्या कहें इतना ही काफी है कि "पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्" यह मंत्र ही निरुक्त में नहीं। निरुक्त में प्रथम मंत्र लिखा जाता फिर उसका निरुक्त लिखा जाता है जब यह मंत्र ही निरुक्त में नहीं तो फिर इसका निरुक्त कहां से आ जावेगा। लगे हुए कलंक को और

तो किसी प्रकार ब्रजमोहन झा उतार न सके, निरुक्त का मिथ्या बहाना बना कर उतारना चाहते हैं। यहां पर कलंक दूर करने के लिए झूठ लिखा और फिर निरुक्त भी बना लिया। अभी क्या है अभी तो निरुक्त ही बनाया है आगे को तो ब्रजमोहन झा वेद बनावेंगे क्योंकि पुराने वेदों में तो अब अश्लीलता आ गई। हम "परोपकारिणी सभा अजमेर" से पूछते हैं कि आपने जो निरुक्त छापा है उसमें "पिता यत्स्वां०" यह मंत्र क्यों नहीं रक्खा क्योंकि ब्रजमोहन झा कहते हैं कि इस मंत्र पर निरुक्त है। जिस मंत्र पर निरुक्त नहीं उस मन्त्र का निरुक्त मिथ्या ही बतला देना क्या आर्यसमाज कानपूर इतने पर भी लज्जित न होगा? यदि इतने पर भी लज्जा इस आर्यसमाज को नहीं तब तो इसके साथ में शास्त्रार्थ करना बड़ी भारी भूल है।

हम प्रतिनिधि सभा यू० पी० से प्रार्थना करते हैं कि वह इस अनर्थ को रोकें नहीं तो कुछ दिनों में कानपुर आर्यसमाज नये वेद तैयार कर पुराने वेदों को अमान्य कर देगी। मिथ्या लेख से संसार को धोखा देना **यह आर्यसमाज का इक्कीसवां पराजय है।**

"पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्" इसके ऊपर ब्रजमोहन झा ने कहा कि इस मन्त्र का पता नहीं। इससे ब्रजमोहन झा यह सिद्ध करना चाहते थे कि सनातनधर्म की तरफ से बनावटी मन्त्र दिया गया है। यह मंत्र ऋग्वेद में है और फिर ऐतरेय ब्राह्मण ने भी इसको लिखा है। "प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरम्" ऐ० पं० ३ कण्डि० ३३। इसके ऊपर स्वामी दयानन्द ने भाष्य किया है (देखो ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका) और उसी दयानन्द भाष्य से ब्रजमोहन झा ने "तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः" इस लेख को आर्यसमाज के छपवाए हुए शास्त्रार्थ की टिप्पणी में दिया है। अब पाठक जान गये होंगे कि पं० गिरिधर शर्मा का लिखा मंत्र वेद में मौजूद है।

पुराण वैदिक हैं या अवैदिक इस शास्त्रार्थ में यदि आर्य-समाज की ओर से कोई विद्वान् पुरुष खड़ा होता तो आर्यसमाज एकही बार हारता किन्तु ब्रजमोहन झा की बेढंगी चाल से २१ बार हारा, यह हमको भी शोक है।

यदि आर्यसमाज एक उत्तर देकर बंद हो जाता तो आर्य समाज का विजय हो जाता। यह कैसे? वह यह कि जिस समय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने यह पूछा था कि वेद जिनको

मान्य बतलाता, विराट का अनुगमन बतलाता है, जिनमें सर्गादि पंच क्रियायें हैं, वे पुस्तकें कौन हैं। यहां पर पुस्तकों के नाम बतला देने से आर्यसमाज का विजय हो जाता। किंतु ब्रजमोहन झा ने ऐसा नहीं किया। ऐसा न करने पर उसे २१ बार निग्रह स्थान पर जाना पड़ा।

आर्यसमाज कोई मामूली सोसाइटी नहीं—इसमें रजिस्टर्ड आर्यसमाजें हैं, जोशदार सभासद हैं। अच्छे २ पदाधिकारी हैं, । इनके ऊपर प्रतिनिधि सभायें हैं ; आर्यसमाज में उपदेशक और विद्वान् सज्जन हैं। आर्यसमाज के गुरुकुल, संस्कृत पाठशा-लायें हैं। हाईस्कूल और कालेज हैं। पुत्री पाठशालायें हैं। समाचारपत्र हैं। आर्यसमाजी काम करनेवाले गिने जाते हैं और काम करते करते भी ४८ वर्ष हो गये किन्तु इनने अब तक इतना निर्णय न किया कि वे पुराण कौन हैं जिनको वेद अनादि बतलाता है। मेरी प्रार्थना प्रत्येक आर्यसमाज से, उसके प्रत्येक सभासद से, प्रत्येक पदाधिकारी से, प्रत्येक विद्वान् से, प्रत्येक उपदेशक से और प्रत्येक हाई स्कूल, पुत्री पाठशाला, गुरुकुल, आदि के मुख्याधिष्ठाताओं और प्रत्येक प्रतिनिधि सभा और उसके अधिकारियों से, परोपकारिणी सभाओं और समाचार-

पत्रों से है, कि कृपया यह पता चलावें कि वे पुराण कौन हैं जिनका जिक्र वेद में है। हमें विश्वास है कि इस विषय पर आर्यसमाज के दो लाख मनुष्यों में से एक भी सज्जन प्रलय तक भी यह नहीं बतला सकता कि पुराण नामक अमुक २ ग्रन्थ हैं। जब इनको अपने वेद में कहे ग्रन्थों का पता नहीं तब फिर क्या हम यह नहीं कह सकते कि समस्त ही आर्यसमाजी धर्म से अनभिज्ञ हैं? आर्यसमाज ने धर्म की तरफ से आंख बन्द कर ली है यदि हम यह कह दें कि आर्यसमाज धार्मिक सोसाइटी ही नहीं तो क्या इसमें कुछ अत्युक्ति होगी? इतने पर भी आर्यसमाज प्रत्येक समय में शास्त्रार्थ को तैयार रहती है! मुझे आशा है कि विचारशील आर्यसमाजी इस कथन पर ध्यान देंगे।

कई एक मनुष्य यह कहेंगे कि पं० गिरिधर शर्मा ने पुराणों की अश्लीलता का तो कुछ उत्तर ही नहीं दिया। इसका उत्तर यह है कि क्या पं० गिरिधर शर्मा इतना भी नहीं समझते थे कि शास्त्रार्थ पुराणों की वैदिकता और अवैदिकता पर निश्चित हुआ है. अश्लीलता से क्या सम्बन्ध, क्या उनको इतना भी मालूम नहीं था कि दो घंटे में इतनी बड़ी २ कथाओं का कैसा

उत्तर हो सकता है, क्या उनको इसका भी ज्ञान नहीं था कि इन कथाओं के उठाने से शास्त्रार्थ का विषय बिलकुल ही छूट जावेगा और विषयान्तर में जाने से हमारी बिना हार की हार हो जावेगी। इन बातों को उन्होंने अपने लेख में भी लिख दिया।

यहां पर हमारी यह इच्छा थी कि हम कथाओं और उनके उत्तर विस्तार से लेख देते किन्तु ऐसा करने पर केवल इस प्रथम शास्त्रार्थ का ही मूल्य कम से कम १।) हो जायगा। और ऐसी दशा में शास्त्रार्थ का बांटना और बिकना कठिन होगा इस कारण पुस्तक बहुत बड़ी होने के भय से संक्षेप से उत्तर देते हैं—

व्रजमोहन झा ने प्रथम तारा की कथा रक्खी, दूसरी शिव मोहनी की और तीसरी महाभारतोक्त उतथ्य और उसकी स्त्री ममता की। बृहस्पति की स्त्री तारा को चन्द्रमा ले गया और उतथ्यकी स्त्री ममता से बृहस्पति ने भोग किया। ऐसा करना क्या हमारे लिये यह उपदेश होगया कि तुम भी ऐसा किया करो? रावण प्रभु श्रीरामचन्द्र जी की धर्मपत्नी जानकी को हर के ले गया तो क्या हमारे लिये यह धर्म हो गया कि हम भी ऐसा ही किया करें? व्यासजी ने महाभारत और श्रीमद्भागवत में यह भी लिख

नहीं दिया कि जैसे चन्द्रमा और वृहस्पति ने किया है वैसे ही तुम भी करो। उन्होंने यह भी नहीं लिखा कि यह मनुष्यों का धर्म है। जैसा जिसने किया व्यासजी ने उसे वैसा ही लिख दिया। इससे तो उलटा पुराण की सत्यता सिद्ध होती है।

कानून, वेद या धर्मशास्त्र जिसके लिये बनते हैं वही कानून तोड़ने का अपराधी होता है। म्युनिसिपेलिटी ने कानून बनाया कि जो कोई सड़क पर पेशाब करेगा वह पकड़ा जावेगा किन्तु सड़क पर रात दिन सैकड़ों घोड़े और बैल पेशाब करते हैं परन्तु एक भी घोड़ा बैल पकड़ा नहीं जाता। यह क्यों? और यदि कोई मनुष्य किसी बैल को पेशाब करते देख आप भी सड़क पर पेशाब करदे और वह पकड़ा जावे तब वह यह हुज्जत मचावे कि बैल-घोड़ा अपराधी क्यों नहीं, मैं अपराधी क्यों? इसके ऊपर उस मनुष्य को समझाया जावेगा कि म्युनिसिपेलिटी का कानून मनुष्यों के लिये हैं पशुओं के लिये नहीं। इसी प्रकार वेद, धर्मशास्त्र आदि २ कानून मनुष्यों के लिये हैं देवताओं के लिए नहीं। चन्द्रमा और वृहस्पति दोनों ही देवता हैं। देवयोनि मनुष्य योनि से भिन्न होने से पशु पक्षी जिस प्रकार मनुष्य कानून में नहीं आ सकते इसी प्रकार मनुष्य के ऊपर अधिकार रखने वाले वेद शास्त्र के

मध्य देवता भी नहीं आ सकते। इसको केवल हम ही नहीं कहते किन्तु समस्त वैदिक ग्रन्थ सिद्ध कर रहे हैं। शारीरिक भाष्य में श्रीभगवान् शङ्कर लिखते हैं कि "एतच्छास्त्रं मनुष्यानधिकरोति" यह शास्त्र मनुष्यों पर ही अपना अधिकार रखता है। जब देवता इस कानून में ही नहीं आते तो फिर इस कानून में कहा हुआ दोष उनके ऊपर किस प्रकार आरोपित हो सकता है? देवता सब के यहां का हव्य खा सकते हैं मनुष्य को निषेध है। मनुष्यों के लिये योगी बनना शास्त्र दृष्टि से आवश्यकीय है किन्तु देवता जन्म से ही योग सिद्धि को प्राप्त होते हैं। मनुष्य के लिये विद्वान् बनना आवश्यकीय है किन्तु देवता जन्म से ही विद्वान् होते हैं। मनुष्य एक ही शरीर धारण करता है किन्तु देवता एक ही दिन में अनन्त शरीर धारण कर सकते हैं। मनुष्य और देवताओं में बड़ा भारी अन्तर है अतएव वे इस शास्त्र के पाबन्द नहीं।

कर्मयोनि को किये हुये कर्म का पाप पुण्य लगता है भोग योनि को नहीं। पशु पक्षी कीट पतङ्ग और देव ये भोग योनियां हैं इन्हें कर्म का पाप पुण्य नहीं लगता। किसी प्राणी की हिंसा करके उसके शरीर को खा जाना यह शास्त्र ने मनुष्य के लिये

पाप बतलाया है किन्तु शेर आदि हिंसक प्राणियों के लिये इसका पाप नहीं। जिस प्रकार पशु पक्षी आदि योनियों को पाप नहीं लगता इसी प्रकार भोगयोनि होने के कारण देवयोनि को भी पाप नहीं लगता।

वृन्दा की कथा में तो पातिव्रत धर्म का महत्व दिखलाया गया है। वृन्दा के पातिव्रत धर्म के महत्व से जालन्धर किसी से भी मरता नहीं था। यदि कोई यह कहे कि फिर विष्णु ने वृन्दा का पातिव्रत धर्म भंग करने से क्या लाभ उठाया। इसके ऊपर हम यही कहेंगे कि जालन्धर अत्याचारी राक्षस जो नित्य २ अनेक पतिव्रताओं का धर्म बिगाड़ता था उस पातिव्रतधर्म की रक्षा के लिये यह उद्योग किया गया। फिर हिन्दू शास्त्र इस बात को भी तो बतला रहा है कि ईश्वर की समस्त कथायें मनुष्यों की शिक्षा के लिये हैं। इस कथा से विष्णु ने यह भी दिखला दिया कि स्त्री का पातिव्रत धर्म बिगाड़ने से—और वह भी धर्म की रक्षा के लिये—तथापि हमको शाप स्वीकार करना पड़ा और यदि कर्म बन्धन में बँधा हुआ मनुष्य किसी स्त्री के पातिव्रत को बिगाड़ेगा तो उसकी दुर्दशा अवश्य होगी। यह इस कथा से शिक्षा निकलती है। इस शिक्षा को न समझ स्थूल बुद्धि के मनुष्यों को अश्लीलता ही दृष्टि पड़ती है।

मनु में लिखा है कि जो हिंसा में सहायता देता है वह अपराधी है। हिंसक प्राणियों की प्रकृति ईश्वर ने इस प्रकार की बनाई है कि जिससे सिंह आदि मांस छोड़कर और किसी पदार्थ से अपनी जीवन-यात्रा निर्वाह ही नहीं कर सकते। प्रकृति का दाता ईश्वर है इस कारण हिंसा में सहायक है। किंतु वह दोषी नहीं।

वैदिक लोग ईश्वर को कर्म फल का देने वाला मानते हैं। जितने भी प्राणी मरते हैं वे सब ईश्वर की आज्ञा से शरीर छोड़ते हैं, किन्तु इसका दोष कोई भी परमात्मा पर नहीं लगता। इत्यादि अनेक उदाहरणों को आगे रख मानना पड़ेगा कि ईश्वर विधि निषेध से बाहर है, ईश्वर को न तो कोई शास्त्र आज्ञा में बांधता है और न निषेध में। वेद में समस्त ही मंत्र मनुष्यों के लिये रक्खे गये हैं, ईश्वर के लिये एक भी नहीं। इससे मानना पड़ेगा कि ईश्वर विधि निषेध से बाहर है।

जब ईश्वर को समस्त संसार विधि निषेध से बाहर मानता है तो फिर परमात्मा शिव का मोहनी के पीछे जाना क्या किसी जगह निषेध था इसका प्रमाण कभी वादी सौ दो सौ जन्म धारण करने पर भी दे सकता है? यदि नहीं दे सकता तो

फिर महादेवजी को मोहनी के पीछे भागने से पाप मान बैठना यह कथन चंडूखाने की गप्प से क्यों कम माना जावे।

इस कथा में तो व्यासजी ने वैष्णव भक्तों को अनन्यभक्त बनाने के लिये शिवशक्ति से वैष्णवशक्ति की प्रबलता दिखलाई है। मुझे नहीं मालूम इसमें कौन दोष घँस गया कि जिससे वादी इस कथा को आगे रख कर अपनी विजय के मानसिक लड्डू खा रहा है।

जितनी भी कथा वादी ने पुराणों की दिखलाई वे समस्त निर्दोष हैं इस बात को पाठक देख चुके। वादी भी इस बात को जानता था कि कथा तो निर्दोष हैं किन्तु अपनी समस्त चालें बंद होते देख उसे यही सूझ पड़ा कि इस समय कुछ बन नही पड़ता यदि हम इन कथाओं को आगे रख देंगे तो पंडित गिरिधराचार्य कुछ देर के लिए इन कथाओं में अटक जावेंगे और समय पूरा हो जावेगा।

किन्तु पं० गिरिधर शर्मा अनुभवी थे। वे शास्त्रार्थ के विषय को छोड़ कर इन कथाओं पर गये ही नहीं। वे बार बार यही लिखते रहे कि वे पुराण बतलाओ जिनके महत्व को वेद अपने श्रीमुख से कह रहा है। आर्यसमाज लाचार होकर उत्तर

देने से मौन हो गया । इसी कारण से समाज को अपने सिर पर घोर पराजय लादना पड़ा ।

अपना पराजय समझ कर वादी ने बड़ा उद्योग किया है कि हम पत्र-व्यवहार को काट छांट करके इसी में विजय पा जायं, किंतु ऐसा करने पर भी सभ्य सोसाइटी के सन्मुख वादी नीचा ही देख रहा है। आर्यसमाज की तरफ से पत्र-व्यवहार भी बिना विचारे ही किया गया । उसमें बच्चों के से लेख लिखे गये और जिन लेखों के विरुद्ध आर्यसमाज को स्वतःकार्य करना पड़ा । आर्यसमाज ने ता० ६—४-१८ की चिट्ठी में लिखा कि "हमारे पास इतनी संख्या में विद्वान् नहीं हैं जिससे शास्त्रार्थ को हम आवें, दो दिन का अवकाश दीजिए । शास्त्रार्थ में कितने विद्वानों की आवश्यकता होती है इस बात को पं० गिरिधर शर्मा सरीखे अनुभवी पुरुष जानते हैं" । इतना लिखने पर भी आर्यसमाज ता० ७ को शास्त्रार्थ पर आया और शास्त्रार्थ किया।

ता० ६-४-१८ की चिट्ठी के लेख को बच्चों का सा खेल समझें या शास्त्रार्थ को, इसका निर्णय आर्यसमाज कानपूर स्वतः करेगा । समाज की ओर से स्थान स्थान में पत्र-व्यवहार में यही उद्योग किया गया है कि आर्यसमाज निर्भीक तथा शास्त्रार्थ में

प्रवीण रह कर बिजय पा गया है और सनातनधर्म इसके विरुद्ध रहा, किंतु विचारशील पाठक शुद्ध पत्र-व्यवहार से अपने आप नतीजा निकाल लेंगे।

जब पत्र-व्यवहार से भी आर्यसमाज ने अपने को गिरा हुआ समझा तब ब्रजमोहन झा की प्रशंसा करना आरंभ करदी। कहीं पर उन्हें तार्किक लिखा और कहीं पर व्याख्यान वाचस्पति! उपाधि देने पर भी जब विजय होते न देखा तब शास्त्रार्थ के चतुर्थ (अंतिम) पत्र के अंत में २० पंक्ति का लेख अपनी ओर से बढ़ा कर अपने कानपूर शास्त्रार्थ नामक पुस्तक में छपा दिया। क्या कोई भी बिचारशील मनुष्य इस कार्य को उचित समझेगा? क्यों कि आर्यसमाज अपने को विशेष सत्यवादी होने का दावा करता है उसके लिए ऐसा अन्याय करना विशेष लज्जाजनक है! किंतु इतना करने पर भी समाज को नीचा ही देखना पड़ा। सच सच ही है।

प्रथम शास्त्रार्थ समाप्तः।

कानपुर का द्वितीय शास्त्रार्थ

विषय—"श्राद्ध"।

* श्रीहरिः *

भूमिका

तारीख ७ अप्रैल सन् १९१८ को हमारे उत्सव पर आर्यसमाज की चिट्ठी आई थी कि हमारा उत्सव ता० १८ अप्रैल से ता० २० तक होगा हम आपको निमंत्रित करते हैं आप उन तारीखों में शास्त्रार्थ करने के लिये अवश्य पधारें। नियम आप जो चाहें सो।

किन्तु ता० ५ अप्रैल को जब पुराण का शास्त्रार्थ हो गया और उसमें आर्यसमाज पराजय पर पहुंचा तब हम को अनुमान हुआ कि आर्यसमाज में भी कोई न कोई सज्जन समझदार होंगे और वे अब शास्त्रार्थ का नाम न लेंगे। परन्तु ऐसा न हुआ। आर्यसमाज के किसी भी पुरुष ने इस पर विचार नहीं किया। किंतु अपने मन में यह अनुमान करके कि सम्भव है ता० ७ अप्रैल को पुराण विषय में हारा हुआ आर्यसमाज इस शास्त्रार्थ में विजय पा जावे, ऐसा समझ कर उसने अपने नगर कीर्तन

के दिन एक विज्ञापन बांटा। उस विज्ञापन में लिखा हुआ था कि सनातनधर्म ने अब तक भी करवट नहीं बदली। इसे पढ़ हम शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हो गये।

जिस समय हम शास्त्रार्थ के लिये उनके पंडाल में गये, और हमने मूर्तिपूजा का विषय रक्खा उस समय आर्यसमाज के छक्के छूट गये, वह घबरा गया, बहस करने लगा कि मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ क्यों हो श्राद्ध पर क्यों न हो। हमने फिर निवेदन किया कि मूर्तिपूजा पर ही क्यों न रक्खा जाय। इसके ऊपर आर्यसमाज की तरफ से कहा गया कि मूर्तिपूजा के ऊपर हमारे पण्डित तैयार होकर नहीं आये। इस पर हमको बड़ी हँसी आई कि जो लोग रात को विषय देख प्रातःकाल शास्त्रार्थ करते हैं। क्या ये भी आर्यसमाज में विद्वान् बनने का दावा करते हैं। आज तक जिन्होंने यह नहीं समझा कि वास्तव में वेद मूर्तिपूजन का खण्डन करता है या मण्डन, जो आज तक बिना देखे आग्रह वश ही मूर्तिपूजन का खण्डन वेदों में समझते रहे हैं वे रात भर में पूर्ण विद्वान् हो कर शास्त्रार्थ पर आजावेंगे इस कारण हमने समाजी भाइयों की विशेष इच्छानुसार मूर्तिपूजा विषय को दूसरे दिन के लिए रख, इस दिन उन्हीं के निर्वाचित विषय

'श्राद्ध का शास्त्रार्थ' स्वीकार कर लिया।

यदि आर्यसमाज का यह सिद्धान्त होता कि समाज की तरफ से कोई भी पण्डित उठकर मूर्तिपूजा पर ही शास्त्रार्थ कर लेगा तब तो ऐसे मन्तव्य रहने पर आर्यसमाज धर्म पर रह सकता था किन्तु ब्रजमोहन झा ने तो आर्यसमाज के ऊपर वह जादू कर रक्खा था जिससे आर्यसमाज कानपुर ब्रजमोहन झा को ही तार्किक, विद्वान् और व्याख्यानवाचस्पति समझ बैठा था और शेष आर्य पण्डितों को समझ लिया था कि ये तो मामूली लोग हैं अतएव शास्त्रार्थ ब्रजमोहन झा करेंगे और ब्रजमोहन झा उस दिन मूर्तिपूजा के शास्त्रार्थ पर तैयार नहीं थे इस कारण उन्होंने मूर्तिपूजा विषय को दूसरे दिन के लिये रक्खा।

इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की तरफ से गुरुकुल बृन्दाबन के मुख्याधिष्ठाता पं० नारायण प्रसाद आदि आदि कई एक उपदेशक उपस्थित थे और सनातनधर्म की तरफ से महाराज श्री पं० कल्लूमलजी के प्रसिद्ध संस्कृत पाठशाला के पण्डिताग्रगण्य पं० विश्वम्भरदत्त जी व्याकरणाचार्य तथा क्राइस्ट चर्च स्कूल के संस्कृत प्रधानाध्यापक पं० चन्द्रशेखरजी अग्निहोत्री आदि २ कानपुर के कई एक प्रसिद्ध २ विद्वान् पधारे थे

आर्यसमाज की तरफ से व्रजमोहन झा और सनातन धर्म की तरफ से पं० कालूराम शास्त्री शास्त्रार्थ को तैयार हुये। यह शास्त्रार्थ ता० १९ अप्रैल सन् १९१८ को दिन के साढ़े आठ बजे से साढ़े दश बजे तक (१२ मिनट में लिख कर तीन मिनट में सुनाना) इसी रीति से होता रहा। शास्त्रार्थ में किसी का लेख घटाया बढ़ाया नहीं गया ज्यों का त्यों रक्खा है।

भवदीय

विष्णुदयाल मिश्र।

* श्रीहरिः *

कानपुर का द्वितीय शास्त्रार्थ

विषय—"श्राद्ध"।

ता० १६ अप्रैल सन् १९१८ ई०

आर्यसमाज (प्रथम वार)

आज शास्त्रार्थ श्राद्ध विषय पर होना है। हम श्राद्ध जीवितपितरों का मानते है और हमारे भाई मृतक पितरों का श्राद्ध मानते हैं।

इस सम्बन्ध में निवेदन यह है कि श्राद्ध मृतकों का हो ही नहीं सकता क्योंकि उसमें भोजनादि से मृतकों की तृप्ति होना आवश्यक है और यह सम्भव ही नहीं जब कि उनको कर्मानुसार जन्म ग्रहण करना होता है। यदि आप कहें कि सबका जन्म नहीं होता तो किन २ का नहीं होता यह भी साध्य कोटि में है। इसके अतिरिक्त पितर शब्द मृत पुरुषों में घटता ही नहीं। निरुक्तकार का कथन है।

पिता पाता वा पालयिता वा ।

अर्थात् पिता :पालन करने वाले को कहते हैं पितर शब्द पितृ का बहुवचन है। अतः सिद्ध है कि पालन करना मृत पुरुषों में घट ही नहीं सकता पालन करना जीवितों में ही घट सकता है।

देखिये यजुर्वेद अ० १६ । ८६ में स्पष्ट लिखा है।

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिन् लोके शतं समाः ॥

इस में पितर का जीवित ही होना सिद्ध है और भी देखिये अथर्व १८ कां० ४ अ० ७८ 'स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः' इस में पृथिवीस्थ पितरों का स्पष्ट वर्णन है। अतः सिद्ध हो गया कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही हो सकता है और वही वेद प्रतिपाद्य है।

(ह०) व्रजमोहन झा ।

सनातनधर्म (प्रथमवार)

भोजनादि से तृप्ति क्यों नहीं होती क्या आप उसी क्षण में

तृप्ति मानते हैं। वेद कहता है कि पितरों की तृप्ति होती है, ये यहां आकर भोजन करते हैं—

"ये निखाता[A] ये परोप्ता॰" इत्यादि।

[A] ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आवह पितृन्हविषे अत्तवे ॥ ३४
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान्वेत्थ यदि ते जातवेदःस्वधया यज्ञं स्वधिति जुषन्ताम् ॥३५

ये दोनों मन्त्र अथर्व वेद के १८ वें काण्ड में एक साथ लिखे हैं जिनका अर्थ नीचे लिखता हूं देखिये—

अर्थ—(ये) जो (निखाताः) गाड़े गये (ये) जो (परोप्ताः) वन में छोड़ दिये गये (ये) जो (दग्धाः) जला दिये गये (येच) और जो (उद्धिताः) शरीर सहित स्वर्गवासको गये (अग्ने !) हे अग्नि! (तान् सर्वान्) उन सब (पितृन्)पितरों को (हविषे) हवि (अत्तवे) भोजन करने को (आवह) पितृ कर्म में बुलावो ॥३४

(ये) जो (अग्निदग्धाः) अग्नि में दग्ध हुए हैं (ये) जो (अनग्निदग्धाः) अग्नि में दग्ध नहीं हुये (दिवः) द्युलोक के (मध्ये) मध्य में (स्वधया) अमृत रूप अन्न से (मादयन्ते)

(टिप्पणी पृष्ठ ७०)

प्रसन्न हैं (जातवेदः) हे अग्ने ! (त्वम्) तू (यदि) जो (तान्) तिनको (वेत्थ) जानता है तो वे तेरे द्वारा (स्वधया) स्वधा से (स्वधितिम्) पितृ सम्बन्धि (यज्ञम्) यज्ञ को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥ ३५

ये निखाता इत्यादि दो मन्त्रों का यह अर्थ है जो कि हम ने ऊपर लिखा है इसी अर्थ को सायण आदि भाष्यकार लिखते हैं कहने की बात और है किन्तु यह अर्थ ऐसा है कि जिसको बदल कर कोई दूसरा अर्थ नहीं कर सकता। पं० तुलसीरामजी मेरठीय ने बहुत चाहा कि हम कोई ऐसा अर्थ करें कि जिस से मृतक पितरों का श्राद्ध उड़ जावे बहुत कुछ सोचने पर भी वे कृतकार्य न हुऐ और उन्होंने जो इन मन्त्रों के अर्थ किये हैं वे अर्थ ये हैं पं० तुलसीरामजी के अर्थ को पढ़िये—

पदार्थ—(ये निखाताः) जो दब गये (ये परोप्ताः) जो इधर उधर पड़े रह गये (ये दग्धाः) जो केवल फुंक गये(येच) और जो (उद्धिताः) ऊपर उड गये (अग्ने) अग्नि (तान्सर्वान्) उन सब (पितॄन्) पितरों को (हविषे) होम के पदार्थ (अत्तवे) खाने के लिये (आवह) प्राप्त करता है व करावे ॥ ३४

पितर मृतकों को भी कहते हैं–

A"विधूर्ध्व भागे पितरो वसन्ति" ।B

ये समाना:"C जो मन्त्र दिया इसमें पितरों को दी लक्ष्मी

(ये अग्निदग्धाः) जो केवल अग्नि में फुंके (अनग्निदग्धाः) और जो अग्नि में भी नहीं फुंके (दिवः मध्ये) आकाश के मध्य में हैं (जातवेदः) अग्ने (तान्) उनको (यदि) जब (त्वम्) तू (वेत्थ) जानता प्राप्त होता है तब वे (स्वधया) स्वधा कह कर दी हुई आहुति में (मादयन्ते) प्रसन्न होते अर्थात् सहन छोड़ कर अच्छी दशा को प्राप्त होते हैं अतः वे (स्वधया) उसी आहुति से (स्वधितिम्) पैतृक (यज्ञम्) यज्ञ को जुषन्ताम्) सेवन करें ॥ ३५

A विधूर्ध्व भागे पितरो वसंतः स्वाधः सुधादीधितिं मामनंति, यह सिद्धान्त शिरोमणि का वचन है और स्वामी दयानन्दजी ने सिद्धान्त शिरोमणि को प्रमाण माना है देखिये सत्यार्थप्रकाश ।

B वसंतः ।

C ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषांल्लोकः स्वधा नमो यज्ञोदेवेषु कल्पताम् । यजु० १९ । ४५

अर्थ–अपसव्य और दक्षिण मुख हो कर यजमान एक बार

की प्रार्थनाहै। इस से पूर्व मन्त्र में "यमराज्ये"A पद पड़ा है यम-राज्य में मृतक ही पितर जाते हैं। यम का वर्णन वेदों में बहुत आया

लिये हुए घृत को जुहू से दक्षिणाग्नि में होमता है उसका मन्त्र-प्रजापति ऋषि अनुष्टुप् छन्द पितर देवता।

भा०- (ये) जो (समानाः) जाति रूपादि से समान मर्यादा वाले (समनसः) एकान्तः करण वा तुल्य मनवाले हमारे (पितरः) पितर (यमराज्ये)यमलोक में वर्तमान हैं (तेषाम्)उन पितरों के (लोकः) लोक में (स्वधा) स्वधानाम (नमः) अन्न दृष्टि गोचर हो (यज्ञः) यज्ञतो (देवेषु) देवताओंके तृप्त करने में (कल्पताम्) समर्थ हो। पितृनेव यमे परिददात्यथो पितृलोकमेव जयति। श० १२।८।१।१६।४५

ये समानाः समनसो जीवाजीवेषु मामकाः।

तेषा ँ श्रीर्मयिकल्पतामस्मिँल्लोकेशत ँ समाः॥ ४६

(ये) जो (जीवेषु) प्राणियों में (समानाः) समदशा (समनसः) मनस्वी (मामकाः) मेरे सपिण्ड (जीवाः) पितर हैं। (तेषाम्) उनकी (श्रीः) लक्ष्मी (अस्मिन्) इस (लोके) भूलोक में (शतम्) सौ (समाः) वर्षों तक (मयि) मुझ में (कल्पताम्) आश्रय करे॥ ४६

A यम को बलि देने का जो हमने मन्त्र लिखा है वह ऋग्वेद

है। "वैवस्वतं संगमनं यमं राजानं हविषादुवस्य' यहां पर यम को सूर्य पुत्र बतला हवि दिलाई है

और अथर्व वेद इन दोनों में आया है नीचे देखिये।

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत।

अथर्व० १८। ३। १३

अर्थ- [यः] जो [मर्त्यानाम्] प्राणियों में [प्रथमः] पहिले [ममार] मरता है [यः] जो [एतम्] इस [लोकम्] लोक को [प्रथमः] पहिले [प्रेयाय] लेजाता है [जनानाम्] जनों के [संगमनम्] संयमन करने वाले [वैवस्वतम्] सूर्यपुत्र [यमम्] यम [राजानम्] राजा को [हविषा] हवि से [सपर्यत] सत्कार किया जाता है।

यही मन्त्र ऋग्वेद में इस प्रकार आया है—

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजान हविषा दुवस्य।

ऋ०.मं० १० अ० १ सू० १४ म० १

अर्थ—(संगमनम्) प्राणिमात्र का संयमन करने वाले (वैवस्वतम्) सूर्यपुत्र (यमम्) यम (राजानम्) राजा को हवि से परिचरण करो।

H स्वधा पितृभ्यःपृथिविषद्भ्यःस्वधापितृभ्योऽन्तरिक्ष सद्भ्यः स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ।

अन्तरिक्ष दिव् में मृतक ही पितर रह सकते हैं।

मनु ने मृतक का श्राद्ध लिखा—

"पिता यस्य० निवृत्तः स्यात्"

वेद भी "ये निखाता ०" मन्त्र से मृतकों का श्राद्ध बतलाता

H स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥७८॥ स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्ष सद्भ्यः ॥७९॥ स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥८०॥

अर्थ—जो पितर पृथिवी में निवास करते हैं मैं यह अन्न उनको देता हूं ॥७८॥ जो पितर अन्तरिक्ष में रहते हैं मैं यह अन्न उनको देता हूं ॥७९॥ जो पितर (दिवि) स्वर्ग में रहते हैं मैं यह अन्न उनको देता हूं ॥८०॥

० पितायस्य निवृत्तःस्याज्जीवेच्चापि पितामहः ।

पितुः सनाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् । मनु० ३ । २२१

पं० राजारामजी (प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर) का अर्थ—जिसका पिता मर गया हो और पितामह जीता हो वह पिता का नाम बोल कर प्रपितामह का बोले ।

है। स्वामी दयानन्दजी ने मृतकों के लिये ही जलदानादि लिखा है। "अपसव्य हो दक्षिण की तरफ मुख कर 'ओं पितरः [illegible]म् मन्त्र पढ़ कर जल जमीन में छोड़ दे"। नामकरण में अमावास्या के स्वामी पितर और मघा नक्षत्र के स्वामी पितरों के नाम की आहुति लिखी हैं।

(ह०) कालूराम।

आर्यसमाज (द्वितीय वार)

आपने मेरे उत्तर में कहा है कि मृतकों की तृप्ति होती है और उसमें (ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः) आदि मन्त्र दिया है किन्तु इस मन्त्र में मृतकों के श्राद्ध की सिद्धि

पिताप्रेतः स्यात्पितामहो जीवेत्पित्रे पिण्डं निधाय
पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यादिति ॥

कठशाखा का काठक श्रौत सूत्र।

अर्थ-जिसका पिता मर गया हो और पितामह जीवित हो तो पिता का पिंड रख कर पितामह को छोड़ कर पितामह से जो ऊपर के पितर हैं उन के दो पिंड रक्खे।

कुछ भी नहीं होती। इस मन्त्र में जो "निखाता" आदि पद पढ़े हैं वह आत्मा से कुछ भी सम्बध नहीं रखते यथा गीतायाम् "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि" आदि। इसके अतिरिक्त पितर क्या गाड़े भी जाते हैं। इस मन्त्र का ठीक अर्थ यह है कि "हे अग्ने परमात्मन् जो पृथिवी में कंदादिक पैदा होते हैं और जिन्हें हम बोते हैं और जो दग्ध भूने हुये पदार्थ हैं उन सब को खाने के लिये (आवह) प्राप्त कराइये।

इस सम्बध में एक निवेदन और भी है और वह यह कि आप पितर किसको कहते हैं।

यदि आप आत्मा को पितर कहें सम्भव नहीं। स्पष्ट लिखा है नैव स्त्री न पुमान् इत्यादि। यदि कहिये कि शरीर का नाम पितर है तो यह भी सम्भव नहीं क्योंकि वह नष्ट हो जाता है रहता नहीं यदि आप कहें कि शरीर विशिष्ट आत्मा को पितर कहतेहैं तो भी सम्भव नहीं क्योंकि वह सम्बन्ध विशेष मृत्युके बाद रहता ही नहीं। इस युक्ति से श्राद्ध जीवित पितरों का ही हो सकता है क्योंकि वहां आत्मा और शरीर का सम्बन्ध कायम रहता है।

द्वितीय एक बात और भी विचारणीय है वह यह कि मान

लीजिए एक पिता के चार या थोड़ी देर के लिए पुराणों के अनुसार हजारों पुत्र हैं और वे पृथक् स्थानों में श्राद्ध करें तो बिचारे उस पितर की क्या दशा हो निश्चय हो उसे विविध स्थानों में एक ही समय पहुंचने के लिये ऐरोप्लेन भी सहायक न हो सकेंगे। आपने जो लिखा है कि अन्तरिक्ष में मृतक पितर ही रह सकते हैं यह भी ठीक नहीं है शतपथ में स्पष्ट लिखा है "षड् ऋतवः पितरः" यही अर्थ महीधर ने भी किया है और आचार्य सायण ने पितर का अर्थ रश्मी भी किया है अब आप का कथन कि पितर ही अन्तरिक्ष में रह सकते हैं यह अयुक्त सिद्ध हो गया। आपने मेरे कथन "पिता पाता वा पालयितावा" का कुछ भी उत्तर नहीं दिया जिसमें निरुक्तकार ने पिता का अर्थ केवल पालन करने वाला लिखा है और यह मृतकों में घटता ही नहीं। उत्तर न देना अप्रतिभा निग्रह स्थान है।

(ह०) व्रजमोहन झा।

सनातनधर्म (द्वितीय वार)

"ये निखाता" इसमें शरीरों की चार दशा दिखाई हैं जिन

के शरीरों की यह दशा है उनको हवि खाने के लिये बुलाने A की प्रार्थना ईश्वर से है। "आवह" का अर्थ ले आना होता है। गमन और प्राप्त्यर्थ धातुवों के पीछे आङ् लगाने से उलटा अर्थ होता है 'नयति आनयति' इत्यादि। आपत्ति में पितर गड़ते भी है जैसे घोर संग्राम में। तुम जो कर्म करते हो जो अगले जन्म में मिलेंगे उनका किससे सम्बन्ध हो सूक्ष्म शरीर और जीव दोनों के मेल से सम्बन्ध है। जीवित पितर के ८ लड़के एक कलकत्ता दूसरा पेशावर इत्यादि में तो जीवित पितर कैसे श्राद्ध में आवेंगे। मृतक पितरों का वायु का शरीर होता है जो लक्षों कोश से २ मिनट में यहां आते हैं वे हजारों कोश भी दो मिनट

A निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान्।

वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते। मनु० ३। १८९

पं० राजाराम (प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर) का अर्थ—क्योंकि पितर उन निमन्त्रित ब्राह्मणों के पास आ जाते हैं वायु की तरह उनके साथ चलते हैं और उनके पास बैठते हैं।

न्यायदर्शन के भाष्य में वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि—

आप्यस तैजस वायव्या लोकान्तरे शरीराणि।

अर्थ—लोकान्तर में जल, अग्नि वायु के शरीर होते हैं।

में जा सकते हैं। मुश्किल आपको है।

उदन्वती[B] द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमाः।
तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते॥

इस मन्त्र में और "विधूध्वंभागे" इसमें और "अन्तरिक्ष सद्भ्यः" इन सब से पितरों का चन्द्रमा के ऊपर भाग में रहना सिद्ध है अतएव मृतकों का ही श्राद्ध में ग्रहण है जीवितों का नहीं।

मनु कहते हैं कि ब्राह्मणों का खाया भोजन पितरों को मिल

B उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमाः।
तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते॥

अथर्व० १८। २। ४८

अर्थ—प्रथम जो आकाश है उसका नाम उदन्वती है। इसमें जल जमता है इस कारण इसका नाम उदन्वती है। मध्यम आकाश को पीलुमती कहते हैं इसी में सूर्यादि ग्रह स्थित हैं इसी कारण इसका नाम पीलुमती है। सबसे ऊपर अन्तरिक्ष का तृतीय भाग सूर्यादि के प्रखर प्रकाशवाला होने से प्रद्यौ कहलाता है वह पितृलोक है जिसमें पितर निवास करते हैं।

जाता है "यस्यास्येन"A इति । यह भोजन मृतकों को ही मिलता है न कि जीवितों को । पिता पालने वाले का नाम ठीक है ।

(ह०) कालूराम ।

आर्यसमाज (तृतीय वार)

आपने 'ये निखाता' आदि मन्त्र से शरीर की चार अवस्थायें मानी हैं । इससे यही सिद्ध होता है कि इस मन्त्र का सम्बन्ध आप भी शरीर की स्थिति पर्यन्त ही मानते हैं । उसके पश्चात् कुछ भी सम्बन्ध इसका शेष नहीं रह जाता । यदि शरीर ही को आप पितर मानें तो जलाने आदि में पितृघात का पाप आप पर पड़ेगा । हमने जो युक्त अर्थ किया उस पर आप ने कोई दोष नहीं दिखलाया । आङ् पूर्वक वह धातु का अर्थ आप प्राप्त कराना कहते हैं

A यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः । मनु० १ । ९५

पं० राजारामजी (प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर) का अर्थ—जिसके मुख से देवता सदा हव्य और पितर काव्य खाते है उससे अधिक (और) कौन भूत (हो सकता) है ।

हमारे पक्ष में भी यही है। यहां कन्दादिकों को पितरों को प्राप्त कराने की परमात्मा से प्रार्थना है। आप पितरों को वायुरूप केवल बतलाते हैं किन्तु उनको कर्मानुसार जन्म लेना होता है इस में आप भूल गये।

दूसरे जन्म को प्राप्त पितर वायु रूप कैसे हो सकता है और उसे भोजन कैसे प्राप्त कराया जा सकता है हम लोगों में दो चार पुत्रों के लिये सर्वत्र श्राद्ध करने की आज्ञा नहीं है किन्तु जिस पुत्र के समीप वह पितर होगा वही उसका श्राद्ध करेगा आपने प्रमाण में "उदयन्ती" इत्यादि मन्त्र पेश किया किन्तु इसमें पितर से ऋतुओं का ग्रहण है।

अब हम बतलाते हैं कि पितर किन को कहते हैं—

वेदप्रदानादाचार्यं पितरः परिचक्षते। मनु०

इसमें पितर से आचार्य का ग्रहण किया है और देखिये यजु० १६। १५ 'मानो वधीः पितरं मोत मातरं' स्पष्ट कहा है। पितरंमावधीः। यहां मृतकों का मारना सम्भव ही नहीं।

देखिये मनु भगवान कहते हैं—

जनकश्चोपनेताच यश्च विद्यां प्रयच्छति।

अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥

शतपथ में भी पितर शब्द से मृतक पितरों का कुछ भी ग्रहण नहीं है वहां पर ऋतुओं को पितर कहा है।

आपने संस्कार विधि का जो उदाहरण दिया है 'ओं पितरः शुन्धध्वम्' इसमें मृत शब्द भी नहीं है प्रत्युत वहां भी जीवितों से ही तात्पर्य है।

और देखिये यजु० १९ अ० ६३ वां मन्त्र—

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं

धत्तं दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य

वस्वः प्रयच्छत इहोर्जं दधात।

यहां पर पितरों से प्रार्थना है कि आइये ऊन के लाल आसनों पर विराजिये। आप सम्पत्ति के देने वाले हो, सन्तान के लिये ऐश्वर्य का भाग दो तथा यज्ञ में बल धारण कराओ क्या कभी मृत पितरों का भी आसनों पर बैठना सम्भव है।

मनुस्मृति का आपने प्रमाण दिया है पहिले तो यह सबका सब हमें माननीय ही नहीं इतने पर भी मनुस्मृति का तो आप जिकर ही न करते तो अच्छा था क्योंकि मनुस्मृति से श्राद्ध मानने पर वह सारी प्रक्रिया सूअर आदि मारने को करना

पड़ेगा । क्या आप उसे स्वीकार करते हैं देखिये मनु० अ० ३ श्लो० २६७ से २७२ ।

(ह०) ब्रजमोहन झा ।

सनातनधर्म (तृतीय वार)

शरीरों को पितर नहीं लिखा किन्तु जिनके शरीरों की यह दशा हुई है । आप इस मन्त्र के अक्षरों का अर्थ करदें और ईश्वर के द्वारा बुलाना लिखा उसको समझाइये । कर्मानुसार जन्म, क्या कर्मानुसार पितर पितृलोक में नहीं जाते यह उनका प्रकरण है जो पितृलोक को गये ।

निरुक्त और मनु का सामान्य वचन है । जीवित को भी पितर कहते हैं और मृतक को भी और जो अपने को अन्न वस्त्र दे उसको भी ।

परन्तु श्राद्ध मनु ने मरे का लिखा उसका आप कुछ उत्तर न दे सके यह कहा कि हम मानते ही नहीं । सत्यार्थप्रकाश में श्राद्ध विषयके ५० से अधिक श्लोक मनु के हैं उन्हें निकाल दीजिये । क्या मीठा ग्राह्य और कटु त्याज्य ।

A"अधोमृता: पितृषु सम्भवन्तु" वेद मृतक पितर का श्राद्ध मानता है। संस्कारविधि में अमावस्या का स्वामी पितर जिसे आप जीवित बतलाते हैं वह कहां रहता है पता बतलाओ। 'ओं पितर: शुन्धध्वम्' में यदि जीवित का तर्पण है तो अपसव्य क्यों? दक्षिण की तरफ मुख क्यों? क्या समस्त पितर नवाब हैदराबाद के राज्य में नौकर हो गये? सब पुत्रों को जीवित श्राद्ध नहीं लिखा इसमें वेद प्रमाण बतलाओ?

इतना शास्त्रार्थ हुआ परन्तु आपने वेद से जीवित पितरों का श्राद्ध न बतलाया अतएव आप का पक्ष गिर गया। पितरों के स्वामी यम को बलि देना लिखा इसका क्या उत्तर है?

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः

A अधोमृता: पितृषु सम्भवन्तु ॥

अथर्व० १८। ४। १८

अर्थ—नीचे लोक में मृतक मनुष्य पितरों में जाकर मिलते हैं।

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामादितः।

मृत्युर्यमस्यासीद् दूत: प्रचेताअसून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार ॥

अथर्व १८। २। २७

स्वधया मादयध्वं । त्वं तान्वेत्थ यदि ते जातवेदः इति ।

इस मन्त्र में मृतक पितरों को बुलाया गया ।

अपेमं जीवा अरुधन गृहेभ्यस्तन्निर्वहत परि ग्रामादितः । मृत्युर्यमस्यासीद्दूत प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार ।

इस मन्त्र में मृतक पितरों का यम के यहां जाना लिखा उसी यम को बलि लिखा ।

"आसीना०A" में मृतक पितरों को आसन है जीवितों का नाम नहीं ।

A आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिन्धत्तदाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यःपितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तइहोर्जन्दधात ।

अर्थ— हे पितरो (अरुणीनाम्) अरुण वर्ण ऊन के आसनों अथवा सूर्य की किरणों के (उपस्थे) ऊपर या गोद में (आसीनासः) बैठे हुये तुम (दाशुषे) हवि के दाता (मर्त्याय) यजमान में (रयिम्) धन को (धत्त) धारण करो

मांस का श्राद्ध उन देशों के लिये है जहां अन्न बिलकुल नहीं होता। अन्न वाले देश के लिये लिखा है कि—

* आनन्त्यायैव०

(ह०) कालूराम।

आर्यसमाज (चतुर्थ वार)

आप ने "ये निखाता" आदि मन्त्र के लिए लिखा है कि अक्षरों का अर्थ कीजिए। पण्डितजी! अक्षरों का अर्थ नहीं हुआ करता। अर्थ शब्दों का हुआ करता है। और शब्दों का अर्थ हम पहिले कर चुके हैं। आप ने लिखा है कि जीवित पितरों को परमात्मा कैसे प्राप्त कराता है। किन्तु वहां हमने कन्द फलादि को

(तस्य) उस के (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये (वसवः) धन को (स्वक्षत) दो (ते) वे तुम (इह) इस यज्ञ में (ऊर्जं) रस को (दधात) स्थापन करो।

* आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः। मुन० ३। २७२

अर्थ—मुनियों के अन्न से अनन्त काल के लिये तृप्ति होती है।

को परमात्मा के द्वारा प्राप्त होना लिखा है आप इस विषय को हमारे पहिले पत्र में फिर पढ़िये। मनु को हम उतना ही मानते हैं जितना कि वह वेदानुकूल है।

आपने कहा है कि हमने जीवित पितरों के लिये कोई प्रमाण नहीं दिया, विदित होता है कि आप ने हमारे दिये "आसीनासो" आदि मन्त्र को पढ़ा ही नहीं।

आप ने जो दक्षिण दिशा के लिये आपत्ति की है उसका प्रकृत विषय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। देखिये आप के मान्य ग्रन्थ ऋषि पञ्चमी में कुतिया और बैल का कैसा सम्वाद है।

शृणु कान्त वचं मह्यं यादृशं कृतवान् वधूः। इत्यादि

इस में कुतिया ने बैल से कहा है कि ऐसे श्राद्ध से क्या प्रयोजन जो खायें ब्राह्मण और हम माँ बाप को ढूंडे लगें।

पहिले पत्रों में हमने आप से प्रश्न किया था कि आप पितर कहते किसको हैं अर्थात् शरीर को आत्मा को अथवा शरीर विशिष्ट आत्मा को, आपके मतानुसार तीनों पक्षों में

दोष आता है। आप ने जो पूछा कि कर्मों का सम्बन्ध किससे है और आप ने उसे सूक्ष्म शरीर और जीव के सम्बन्ध से माना है हमें भी यह स्वीकार है परन्तु शरीर और जीव मिल कर पिता माता नहीं बना करते यह सभी जानते हैं।

आप ने एक वाक्य "विधूर्ध्वं भागे" इत्यादि दिया है उसका आपने पता भी नहीं दिया। इस के अतिरिक्त पितर शब्द के अनेक अर्थ हैं और उन्हें हम सिद्ध भी कर चुके हैं। पितर का अर्थ सूर्य रश्मि भी है और उनका निवास स्थान चन्द्रमा है अतः यह वाक्य भी हमारे ही अनुकूल हो गया है इसके अतिरिक्त आप को श्राद्ध शब्द का अर्थ भी करना चाहिये।

श्रत सत्यं धीयते अनयामा श्रद्धा श्रद्धया कृतं श्राद्धम्

यहां पर न तो विशेषतः भोजन का सम्बन्ध है और न मृत पितरों का। जो कोई भी कर्म उपर्युक्त लक्षण युक्त हो वही श्राद्ध है। इसके अतिरिक्त पुत्र श्राद्ध करेगा और फल प्राप्ति आप उसके पिता को मानते हैं। ऐसा करने से कृतहानि और अकृताभ्यागम दोष आप पर पड़ेगा।

और भी देखिये अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्मपितामह ने बतलाया है कि मृत श्राद्ध निमि राजा के समय

से चला है। अब इसके पहिले मृतक श्राद्ध न करने से पहिले पुरुषों की क्या दशा हुई होगी।

'आसीना' से मृतक पितरों को आप आसन देना मानते हैं किन्तु यह सर्वथा असम्भव है। क्या आपने कहीं मृत पितरों को आसनों पर बैठे देखा।

मांस का विधान उन देशों के लिये है जहां अन्न नहीं होता इसके लिये आप को मनुजी का प्रमाण देना चाहिये था बिना प्रमाण के आप का कथन मान्य नहीं। अन्न सब ही जगह प्राप्त हो सकता है यह भी प्रत्यक्ष है।

आप ने जो "अग्नि‌मृताः पितृ" आदि मन्त्र दिया है उस का कोई पता नहीं फिर उसका उत्तर क्या दिया जाय। अन्त में जनता यह जान कर प्रसन्न होगी कि आप ने आर्यसमाज का पक्ष मान लिया है अर्थात् यह कि पितर का अर्थ जीवित माता पिता भी है। (ह०) ब्रजमोहन झा।

सनातनधर्म (चतुर्थ वार

अक्षरमय ही शब्द होता है। अर्थ फिर कपोल कल्पित सायण विरुद्ध किया। तर्पण में दक्षिण को तरफ मुख करना प्रकरण

विरुद्ध बतलाते हैं क्या मूर्तिपूजा का शास्त्रार्थ है ? कुतिया की कथा को प्रमाण मान कर ही आर्यसमाज श्राद्ध छोड़ बैठा है। इससे छोड़ें तो सनातनधर्मी छोड़ेंगे। आप के पास जीवित श्राद्ध का क्या प्रमाण है।

P एवमपसव्येन च त्रींस्त्रीनञ्जलीन्दद्यात्पितृभ्यः

यह स्वामी दयानन्द जीका लेख है इस से मृतक श्राद्ध सिद्ध है "स्वधायिभ्यः A" इस मन्त्र से स्वामी दयानन्दजी ने एक कौल (ग्रास) पितरों को देना लिखा है कौल में जीवित पितरों का पेट नहीं भर सकता यह मृतकों को अन्न देना है।

P स्वामी दयानन्द कृत मुन्शी नवलकिशोर प्रेस में छपी पञ्चमहायज्ञविधि में लिखा है जिसकी भाषा यह है कि अपसव्य होकर पितरों को तीन २ अञ्जुलि जल दे तीन अञ्जुलि जलदान अपसव्य होकर देना मृतक के लिये जलदान है जीवित के लिये नहीं।

A संस्कारविधि मे "ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः" इस से दक्षिण की तरफ बलि रखना लिखा है और स्वामी दयानन्द जी ने इस मन्त्र का पता यह दिया है यजु० २ अध्याय।

8 'सानुगाय यमाय नमः' मन्त्र से स्वामी दयानन्दजी ने मृतक श्राद्ध बतलाया है जिसका समाज के पास कोई उत्तर नहीं। हमने 'वैवस्वतम्' मन्त्र लिखा आप ने छुआ नहीं।

आसन पर मरे ही बैठते हैं और मरे ही जाते हैं 'एहि २० मन्त्र देखिये।

हमने जो मन्त्र दिया वह अथर्व के १८ काण्ड का था आप जान कर टाल गये उस में आप की पोल खुलनी थी। सूर्य

॥ यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।

यमंह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥

अथर्व० १८ । २ । १

यम के अर्थ सोम किया जाना यम के वास्ते हवि किया जाता और मन्त्र द्वारा अग्निदूत ही यज्ञ से यम के प्रति हवि ले जाता है।

० एहि एहि पथिभिः पूर्याणैर्येनाते पूर्वे पितरः परेताः।

उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥

अथ० १८ । १ । ५४

(येन) जिस मार्ग से (ते) तेरे (पूर्वे पितरः) पूर्व पितर (परेताः) मर कर गये उन २ (पूर्याणैः) यम निर्मित शरीरयान

रश्मि पितर हैं यह कहीं नहीं लिखा। षट् ऋतु पितर भोजन को नहीं आते दिव्य शरीर वाले पितृ लोक को गये हमारे पुरुषा आते हैं।

A प्रेतान्पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्त्तितम्।

आप ने इस श्रौत लेख को आधा लिखा आधे में आप का पक्ष गिर गया। संस्कार विधि के अमावस्या के स्वामी पितर का पता नहीं "ये निखाता०" का कोई ठीक अर्थ नहीं। जीवित पितर का एक लड़का श्राद्ध करे इस में कोई प्रमाण नहीं। हमारे "आनन्त्याय कल्पन्ते" का कोई उत्तर नहीं।

(ह०) कालूराम।

रूप (पथिभिः) मार्गो से (प्रेहि २) जाओ वहां (स्वधया मदन्तौ) स्वधा नाम अन्न से प्रसन्न होते (उभाराजानौ) दोनों प्रकाशमान राजा (देवम्) देव (यमम्) यम को (च) और (वरुणम्) वरुण को (पश्यसि) देखोगे।

A शाट्यायन मुनि कृत श्राद्ध कल्प का यह प्रमाण है और कल्प वेद का अंग है।

श्रीहरिः

शास्त्रार्थ-फल-ज्ञान

(१) आर्यसमाज ने प्रथम पत्र में जीवित पितृ श्राद्ध मण्डन और मृतक पितृ श्राद्ध खण्डन की प्रतिज्ञा की थी जब चारों पत्र समाप्त होने को आये तब तक आर्यसमाज से न तो मृतक पितरों के श्राद्ध का खण्डन ही हुआ और न जीवित श्राद्ध मण्डन । लाचार होकर आर्यसमाज ने श्राद्ध का एक ऐसा लक्षण बनाया कि जिस लक्षण से श्रद्धा से होने वाले सभा, उत्सव, धर्मशाला बनवाना, कालेज खुलवाना, किसी पण्डित या वकील के साथ जाकर पेशाब करवा लाना आदि आदि संसार के समस्त कार्य श्राद्ध हो गये जिससे मृतक और जीवित दोनों ही श्राद्ध उड़ गये । अपने पक्ष का अपने आप खण्डन कर देना यह वादी का प्रमाद (बेहोशी) है । अपने ही सिद्धान्त को कि जिसके मण्डन करने को खड़े हुए हैं अपने आप गिरा देना इससे अधिक पराजय दूसरा नहीं है **यह अद्भुत पराजय आर्यसमाज का प्रथम पराजय है ।**

(२) मालूम होता है कि आर्यसमाज लोगों से महाभारत ठानने के लिये जीवित पितरों का श्राद्ध मानना कहता है और वास्तव में किसी भी आर्यसमाजी ने आज तक अपने जीवित पितरों का श्राद्ध और तर्पण नहीं किया यदि किया होता या इनको करना इष्ट होता तो सभा के बीच में इस प्रकार ब्रजमोहन झा जीवित पितृ श्राद्ध का खण्डन न करते। वास्तव में आर्यसमाजी लोग नास्तिक हैं और दिखाने के लिये आस्तिक बनना चाहते हैं। जब ये जीवित पितरों का श्राद्ध करते ही नहीं तो फिर उसका मण्डन कैसा ? जीवित पितरों का श्राद्ध तर्पण "ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्" स्वामी दयानन्द के इस लेख के अनुकूल सत्यार्थप्रकाश में लिखा जो आज तक न किसी समाजी ने किया है, न आगे को कोई समाजी करेगा। स्वामी दयानन्द के लिखे जीवित श्राद्धका खण्डन कर देना स्वामी जी के सिद्धान्त को पैरों के नीचे रौंदना है। दुनियां के समस्त धर्म अपने अपने आचार्य तथा पूर्व पुरुषाओं का अपमान नहीं करते किन्तु यह विलक्षणता आर्यसमाज में ही है कि जो स्वामी दयानन्दजी को बात बात में नीचे गिराया जाता है। वास्तव में ब्रजमोहन झा आर्यसमाज के ऊपर यह प्रकट कर देना चाहते

है कि मैं स्वामी दयानन्द जी से अधिक विद्वान् हूं अब तुम किसी भी आर्य पण्डित को मेरे बराबर न समझो। इस खुदग़र्ज़ी को आगे रख स्वामी दयानन्द के लेख का अपमान करना **यह आर्यसमाज रेलबाजार के लिये लज्जाजनक द्वितीय पराजय है।**

(३) ब्रजमोहन झा ने "श्रद्धयाकृतं श्राद्धम्" यह जो श्राद्ध का लक्षण लिखा है इसमें कपट है। श्रौत कल्प में जो श्राद्ध का लक्षण किया है उसकी यह पूंछ है पूरा लक्षण हमने मूल में दिखा दिया है। अपना पक्ष गिरता देख विजय के लोभ से ब्रजमोहन झा ने संसार की आखों में धूल झोंकी है **यह आर्यसमाज के लिये लज्जाजनक तृतीय पराजय है।** यदि यहां पर मध्यस्थ संस्कृत का विद्वान् होता और उसको फैसले का अधिकार होता तो वह निःसन्देह समाज के पराजय के शब्द अपने मुख से सुनाता।

(४) आर्यसमाज ने जीवित पितरों के श्राद्ध में "ये समाना" मन्त्र दिया था उसका कुछ भी अर्थ कहकर बतलाया न था कि इस मन्त्र मे जीवित पितरों का श्राद्ध है। सनातनधर्म ने प्रथम

पत्र में दिखलाया कि इसमें तो यह प्रार्थना है कि पितरों को दी हुई लक्ष्मी सौ वर्ष तक हमारे पास रहे। कोई भी जीवित पितर एक रोज भोजन खाकर इतनी लक्ष्मी नहीं दे सकता फिर इसके पूर्व मन्त्र में "यमराज्ये" पद पड़ा है यम के राज्य में मृतक ही पितर जाते हैं। हमारे इस लेख पर आर्यसमाज ऐसा मौन हुआ कि हमने बार बार आर्यसमाज को याद दिलाया किन्तु किसी पत्र में भी इसका उत्तर नहीं दिया उत्तर न देना मानना समझा जाता है अतएव **यह आर्यसमाज का चतुर्थ पराजय है।**

व्रजमोहन झा ने इस मन्त्र पर ऐसी हार मानी कि फिर वे कुछ न लिख सके। शास्त्रार्थ में तो क्या अब भी वे कुछ नहीं लिख सकते। वे तो क्या समस्त दो लाख आर्यसमाजी सात जन्म धारण करने पर भी इस मन्त्र में से मृतक पितरों का श्राद्ध नहीं हटा सकते। यह एक ऐसी हार है कि जिसके ऊपर आर्यसमाज सर्वदा के लिये मौन रहेगा। यदि यह शास्त्रार्थ शास्त्रार्थ की रीति पर होता तो इसी मन्त्र पर समाप्त होजाता।

(५) आर्यसमाजने "पिता पाता वा पालयिता वा" निरुक्त को प्रमाण देकर यह सिद्ध किया कि पालन करने वाले को पिता कहते हैं और वह जीवित में ही घट सकता है अतएव जीवितों

का श्राद्ध होता है। हमने इसके ऊपर द्वितीय पत्र में लिखा है कि पितर जीवितों को भी कहते हैं और मृतकों को भी कहते हैं किन्तु श्राद्ध मृतकों का लिखा है जिसका तुम्हारे पास कुछ उत्तर नहीं फिर आर्यसमाज ने आचार्य और पिता आदि पांच व्यक्तियों को पितर बतलाया। हमने कहा कि यह वचन सामान्य वचन है। हमको यह स्वीकार है कि जीवितों को भी पितर कहते हैं। किन्तु जिनका श्राद्ध किया जाता है वे चन्द्रमा के ऊपर के भाग पितृलोक में रहते हैं। आर्यसमाज ने अपने पत्र में लिख दिया कि पण्डितजी ने जीवितों को पितर मान लिया। हम आर्यसमाज से पूछते हैं कि जीवितों को क्या सनातनधर्म पितर सर्वदा से नहीं मानता और क्या इस बात के ऊपर बहस है कि पितर जीवितों को कहते हैं या मृतकों को। विषय श्राद्ध का है, निर्णय तो यह करना है कि श्राद्ध किसका होना चाहिये। शास्त्रार्थ के विषय को छोड़ कर व्यर्थ समय बिताना और शास्त्रार्थ के विषय पर कुछ भी न कहना **यह आर्यसमाज का पंचम पराजय है।**

(६) आर्यसमाज ने तीसरा प्रमाण यह दिया कि "स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः" इससे सिद्ध है कि पृथिवी में रहने

वाले जीवित ही पितरों का श्राद्ध होता है। इसके उत्तर में हम ने इस मन्त्र के आगे के दो मन्त्र और दे दिये "स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्ष सद्भ्यः" "स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः" हमने दिखलाया कि ये तीनों मन्त्र अथर्व में एक साथ लिखे हैं इनका अभिप्राय यह है कि जो पितर जन्म लेकर पृथिवी पर आगये हैं और जो अन्तरिक्ष लोक में और जो स्वर्ग में हैं यह स्वधा मैं उनको देता हूं। अन्तरिक्ष और स्वर्ग में जीवित पितर नहीं जाते, मृतक ही जाते हैं इस कारण यह स्वधा मृतकों के लिये है इन मन्त्रों में मृतकों का ही श्राद्ध है। इन मन्त्रों को देख कर ब्रज-मोहन झा की बुद्धि ठिकाने न रही और ऐसे लेख लिखने आरम्भ किये कि जिन से स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों पर कुठार चले। इन दोनों मन्त्रों को सुन कर उत्तर दिया कि अन्तरिक्ष और स्वर्ग में रहने वाले पितर ऋतु हैं इस बात को महीधर, सायण आदि भाष्यकार लिखते हैं।

इस के ऊपर हमारा विचार यह है कि आर्यसमाज बहुत घबरा गया कुछ का कुछ लिखने लगा। महीधर के नाम से इस मन्त्र के पितरों को ऋतु बतलाता है। ये मन्त्र अथर्व वेद के हैं और अथर्व पर महीधर ने भाष्य नहीं किया। मनमाना जी में

आया सो लिखना, कुछ भी विचार न करना, **यह आर्यसमाज का षष्ठ पराजय है।** क्या व्रजमोहन झा तथा और कोई आर्यसमाजी प्रलय तक इन मन्त्रों पर महीधर भाष्य दिखला सकता है यदि नहीं दिखला सकता तो क्यों न समझा जावे कि व्रजमोहन झा घबरा कर बेहोशी की बातें करते हैं।

(७) फिर व्रजमोहन झा ने जो यह कहा कि सायण भी इस मन्त्र पर ऋतुओं को देवता मानता है इन मन्त्रों पर सायण भाष्य मौजूद है उन्होंने दिव्य शरीर वाले पितृलोक में गये हुये हमारे पूर्व पुरुषाही इन मन्त्रों के भाष्य में पितर लिखे। क्या कोई आर्यसमाजी, एक नहीं समस्त आर्यसमाजी, इकट्ठे होकर सौ वर्ष में भी दिखला सकते हैं कि इन मन्त्रों पर सायण ने ऋतुओं को पितर माना है। यदि आर्यसमाजी ऐसा नहीं कर सकते तो फिर जब व्रजमोहन झा धर्म को तिलाञ्जलि देकर शास्त्रार्थ में झूठ बोले तब यह क्यों न कहा जावे कि रेलबाजार आर्यसमाज को सत्य बोलने वाला एक भी पण्डित शास्त्रार्थ के लिये न मिला। झूंठों से विजय पाने का साहस करना आर्यसमाज की भूल है। झूठ बोल कर संसार को धोखा देना

यह आर्यसमाज का सप्तम पराजय है।

(८) फिर आर्यसमाजी व्रजमोहन झा ने यह भी बतलाया कि शतपथ भी ऋतुओं को पितर मानता है ये मन्त्र अथर्व वेद के १८ वें काण्ड के हैं और अथर्व वेद का शतपथ ब्राह्मण हो नहीं, इन मन्त्रों के ऊपर शतपथ है ही नहीं। यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय के ३२ वें मन्त्र में शतपथ ने षड् ऋतुओं को पितर माना है कहां का मन्त्र और कहां का शतपथ "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा" क्या इस धोखे के ऊपर आर्यसमाज कानपुर तनक भी लज्जित न होगा। यह आर्यसमाज का अष्टम पराजय है।

(९) अन्तरिक्ष और स्वर्ग में वसंतादि छः ऋतु रहते हैं वेद उन्हीं को पितर मानता है। इस लेख से स्वामी दयानन्द का ३३ देवताओं का सिद्धान्त व्रजमोहन झा ने चकनाचूर कर दिया। स्वामी दयानन्द आग, हवा, पानी, बिजली आदि कुल ३३ देवता मानते हैं। तेतीस से भिन्न इन्द्र, वरुण, कुबेर, आदि आदि किसी भी देवता को देवता नहीं मानते, और न वे जीवित पितरों से भिन्न किसी को पितर मानते हैं। आज व्रजमोहन झा स्वामी दयानन्द के एक सिद्धान्त को पीसने के

लिये षड् ऋतुओं के देवताओं को पितर मानते हैं! क्या यह स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त का खुल्लमखुल्ला खण्डन कर के अपने को स्वामी दयानन्द से विद्वान् साबित करना नहीं है? दयानन्द के एक सिद्धान्त का खण्डन करना यह **आर्यसमाज का नवम पराजय है।**

(१०) अब हम आर्यसमाज से पूछते हैं कि अन्तरिक्ष और स्वर्ग में षड् ऋतु रूप पितर कैसे रहते हैं? क्या वे वहां पर एक दिन में छहों ऋतु अपना २ दृश्य दिखाते हैं? जब संसार में वसंतादि क्रम से आते हैं तब वे वहां रहते हैं या नहीं फिर ऋतु तो आर्यसमाज के मत में समय को कहते हैं क्या यह निराकार समय शरीर धारण करके स्वर्गादि में रहता है और इस को आर्यसमाज अथर्व वेद का कहा स्वधा (कव्य) खाने को देता है और ये उस कव्य को गट्ट २ खा जाते हैं इस को आर्यसमाज रेलबाजार ही मानता है या दूसरा कोई आर्यसमाज भी मानता है? इन निरर्थक बातों को आगे रखना **आर्यसमाज का दशम पराजय है।**

(११) फिर षड् ऋतु रूप पितर भोजन को आते हैं यह

वेद के किसी मन्त्र में नहीं लिखा । इसको हमने लिख दिया कि यह ऋतु नामक पितर भोजन को नहीं आते, हमारे पूर्व पुरुषा पितृलोक में गये हुये दिव्य पितर आते हैं । इसके ऊपर आर्यसमाज ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और न आगे को दे सकता है आर्यसमाज का मुंह बन्द होना **यह ग्यारहवां पराजय है**

(१२) द्वितीय पत्र में आर्यसमाज ने स्वामी दर्शनानन्द वाला प्रश्न उठाया कि तुम पितर किस को मानते हो यदि शरीर को पितर मानते हो तो शरीर दाह करने पर पितृघात का पाप लगेगा और यदि तुम जीव को पितर मानते हो तो जीव न किसी की माता है न पिता क्योंकि न वह पुरुष है और न स्त्री और यदि शरीर विशिष्ट आत्मा को पितर मानते हो तो यह सम्बन्ध जीवित समय तक ही रहता है मरने पर छूट जाता है। हमने इसका उत्तर दिया कि शुभाशुभ कर्मों का सम्बन्ध किस के साथ है जिस प्रकार आत्म विशिष्ट सूक्ष्म शरीर के साथ कर्म का सम्बन्ध है इसी प्रकार पितृ सम्बन्ध आत्मा विशिष्ट सूक्ष्म शरीर के साथ कर्म का सम्बन्ध है इसी प्रकार पितृ सम्बन्ध आत्मा विशिष्ट सूक्ष्म शरीर के साथ है । आर्यसमाज ने इसको दो वार दोहराया किन्तु विशेष कुछ न कहा जितना प्रथम कहा था उतना ही

बार बार कहा। यह कहा कि सूक्ष्म शरीर विशिष्ट आत्मा से पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता जिस प्रकार पुत्रोत्पन्न नहीं हो सकता इसी प्रकार कर्म भी नहीं हो सकता शास्त्र ने जैसे कर्म सम्बन्ध माना है इसी प्रकार पुत्रादि से पितृ सम्बन्ध शास्त्र ने कहा फिर इसको आर्यसमाज ने अपने आप ही छोड़ दिया। किसी विषय का उठाना और फिर आप ही छोड़ देना निग्रह स्थान है

यही आर्यसमाज का बारहवां पराजय है।

(१६) फिर ब्रजमोहन झा ने लिखा कि यदि एक मनुष्य के पांच सात पुत्र हों या पुराणों के कथनानुसार हजारों पुत्र हों और वे सब एकदम श्राद्ध करें तो फिर वह पितर समस्त श्राद्धों में किस प्रकार जावेगा। इस के उत्तर में हमने कहा कि पितरों के वायु के शरीर होते हैं जो पितर लक्षों कोश पितृलोक से दो मिनट में पृथिवी में आ जाते हैं वे पितर दो मिनट में समस्त श्राद्धों के स्थान में हजारों कोश दो मिनट में ही पहुंच सकते हैं। आफत है तुम्हारे लिये, कि एक पुत्र पेशावर में रहता है, दूसरा कलकत्ता, तीसरा हैदराबाद में और इन सब ने किया श्राद्ध तो जीवित पितर सब जगह एक ही दिन में भोजन करने कैसे जावेगा। इस के ऊपर ब्रजमोहन झा ने कहा कि हमारे

यहां समस्त पुत्रों को श्राद्ध करने की आज्ञा नहीं है जिसके पास पिता रहे वही पुत्र श्राद्ध करे। इसके ऊपर हमने कहा कि इसमें वेद का प्रमाण दीजिये, यह कहां लिखा है कि एक ही पुत्र श्राद्ध करे। इस के ऊपर आर्यसमाज की लेखनी बन्द होगई हार कर आगे न बढ़ा यह आर्यसमाज का तेरहवां पराजय है।

(१४) आर्यसमाज ने तृतीय पत्र में "आसीनासो अरुणीना मुपस्थे" मन्त्र लिख इससे सिद्ध करना चाहा कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही होता है, और इसी मन्त्र से यह दिखलाया कि पितरों को उनके आसनों पर बैठना लिखा है हमने उत्तर दिया कि इस मन्त्र में मृतक पितरों का ही आसनों पर बैठना है। इसके ऊपर आर्यसमाज ने कहा कि आपने बैठे देखे हैं। हमने नहीं देखे तो क्या हुआ वेद तो कहता है। इस मन्त्र के पूर्व मन्त्र "त्वमग्न ईडितो" में लिखा है कि हे अग्ने! स्तुति किया हुआ तू हव्य कव्यों को शुद्ध करके स्वधा के साथ पितरों को पहुंचाता है। अग्नि ईश्वर अथवा भौतिक अग्नि के द्वारा स्वधा शब्द के साथ हवि पितरों को पहुंचाना मृतकों में ही घट सकता है। "आसीनासो" मन्त्र के आगे "अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत"

इस मन्त्र में उन पितरों को बुलाया गया है कि जिनके शरीर अग्नि ने उत्तम रीति से भस्म किए हैं। फिर इसके आगे के मन्त्र "उपहूता नः" इस मन्त्र में आये हुए पितरों का स्वागत के साथ बैठना लिखा है फिर 'येनः पितुः पितरो' इस मन्त्र में पितृपति यमराज के साथ पितरों से हवि ग्रहण करने की प्रार्थना की है। यम को साथ लेकर हवि की प्रार्थना करना मृतकों में ही घट सकता है। हम और कहां तक कहें अथर्व वेद के इस अठारहवें काण्ड के सैकड़ों मन्त्रों में मृतक श्राद्ध की विधि उत्तम रीति से सिद्ध होती है। इतना जानकर या न जानकर एक मन्त्र को केवल आसनों पर बैठने के हेतु से जीवितों में घटाना कौन न्यायसंगत कह सकता है? फिर जब हमने कहा कि मृतक पितरों का ही आसनों पर बैठना लिखा है। तब हमारे इतना कहते ही आर्यसमाज ने वेद को छोड़ दिया। वेद को छोड़ देना

आर्यसमाज का चौदहवां पराजय है।

(१५) जब आर्यसमाज को वेद ने किसी प्रकार की सहायता न दी, जब ब्रजमोहन झा वेद से मृतक पितरों के श्राद्ध का खण्डन और जीवित पितरों के श्राद्ध का मण्डन न कर सके तब युक्ति पर उतरे, कहने लगे कि तुमने मृतक पितर आसन पर बैठे कभी

देखे हैं। वेद को न मानना, केवल आँख से देख कर मानना यह सिद्धान्त आस्तिकों का नहीं किन्तु नास्तिकों का है। आंख से बिना देखे भी वैदिक लोग वेद से प्रतिपाद्य वस्तुओं को मानते हैं। आज तक किसी भी वैदिक पुरुष ने ईश्वर तथा जीव को आँख से नहीं देखा तथापि बिना देखे भी सभी वेद मानने वाले ईश्वर जीव की सत्ता को मानते हैं फिर नहीं मालूम ब्रजमोहन झा आँख से बिना देखे वेद में कहे हुये मृतक पितरों का आसन पर बैठना क्यों नहीं मानते? यहां पर ब्रजमोहन झा मनुष्य के आँख से देखे को प्रमाण मानते हैं वेद को प्रमाण नहीं मानते। वेद को प्रमाण न मानना **यह आर्यसमाज का पंद्रहवां पराजय है।**

(१६) इसके बाद आर्यसमाज ऋषिपंचमी में से कुतिया और बैल की कथा को आगे रख कर कहने लगा कि यहां पर साफ साफ लिखा है कि भोजन तो ब्राह्मण खा गये और हम जो श्राद्धकर्ता के मां बाप हैं भूखे ही रह गये और हमको डंडे पड़े। इस के ऊपर हमने कहा कि क्या इस कुतिया की कथा को ही प्रमाण मान आर्यसमाज श्राद्ध छोड़ बैठा है? इस से यदि श्राद्ध छोड़ेंगे तो सनातनधर्मी छोड़ेंगे। पहिले शास्त्रार्थ में जिन पुराणों

को अमान्य और भ्रष्ट कहा जाता था आज उन्हीं पुराणों को प्रमाण मान कर उन्हीं की एक कथा से मृतक श्राद्ध का खण्डन किया जाता है ! गरज़ पड़ने पर पुराणों को प्रमाण मानना **आर्यसमाज का सोलहवां पराजय है ।**

(१७) जब वेद से जीवित पितरों का श्राद्ध सिद्ध न होकर मृतकों का सिद्ध हो गया तब उस वेदसिद्ध मृतक श्राद्ध को पुराण से खण्डन करना, पुराण को वेदसे उच्च श्रेणी में रखना यह **आर्यसमाज का सत्रहवां पराजय है ।**

(१८) स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जिस प्रकार विष मिला भोजन त्याज्य होता है उसी प्रकार पुराण का सर्वांश त्याज्य है । ब्रजमोहन झा ने पुराण को प्रमाण मान स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त को मिथ्या सिद्ध कर अपने को स्वामी दयानन्द से अधिक विद्वान् होने का प्रयत्न किया है अतः **यह आर्यसमाज का अठारहवाँ पराजय है ।**

(१९) फिर ऋषिपंचमी की कथा में यह भी तो लिखा है कि वार्तालाप होने के अनन्तर बैल और कुतिया को उत्तमोत्तम

भोजन दिये गये। जब ये दोनों पेट भर कर उत्तमोत्तम भोजन खा चुके फिर कौन कहता है कि श्राद्ध के दिन ये दोनों भूखे रहे। आधी कथा को पढ़ना और आधी को खा जाना यह संसार की आंखों में धूल झोंकना ब्रजमोहन झा द्वारा आर्यसमाज का उन्नीसवां पराजय है।

(२०) इसके आगे ब्रजमोहन झा ने लिखा कि भीष्म ने राजा युधिष्ठिर कहा कि निमि राजा से मृतक श्राद्ध चला है। हमने मृतक श्राद्ध वेद से दिखलाया है और आर्यसमाज ने भी जीवित श्राद्ध वेद से ही सिद्ध करना उठाया था किन्तु यह उस में कृतकार्य न होकर अब पुराणों पर आया है और हम अभी तक मृतक श्राद्ध का मण्डन और जीवित श्राद्ध का खण्डन वेद से लिखा रहे हैं। यदि वास्तव में मृतक श्राद्ध राजा निमि से चला है तो फिर वेद राजा के बाद के बने ठहरेंगे क्यों कि स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है कि जिसका जिक्र किसी पुस्तक में हो वह पुस्तक उसके बाद की बनी है। इस प्रकार वेदों को नवीन सिद्ध करना आर्यसमाज का बीसवां पराजय है।

(२१) नहीं मालूम ब्रजमोहन झा पुराणों से मृतक श्राद्ध का

खण्डन किस प्रकार करते हैं। जिस महाभारत की कथा से भा जी मृतक श्राद्ध का खण्डन करते हैं उसी महाभारत में उन्हीं युधिष्ठिर और भीष्म के द्वारा मृतकों का श्राद्ध करना लिखा है। जिस समय पाण्डु मर गये उस समय के लिये महाभारत में लिखा है कि—

ततः कुन्ती च राजा च भीष्मश्च सह बन्धुभिः।
ददुः श्राद्धं ततः पाण्डोः स्वधामृतमयं तदा ॥१॥
कुरूंश्च विप्रमुख्यांश्च भोजयित्वा सहस्रशः।
रत्नौघान्विप्रमुख्येभ्यः तथा ग्रामवरांस्तथा ॥२॥

महा भा० आ० पर्व अ० १२८

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं कि तिसके पीछे कुन्ती, धृतराष्ट्र, भीष्म तथा बान्धवों ने मिलकर राजा पाण्डु का स्वधा और अमृतमय श्राद्ध किया ॥१॥ तथा अपने कुल के कौरवों को और हजारों श्रेष्ठ ब्राह्मणों को जिमाकर उनको रत्नों के ढेर तथा अच्छे २ ग्राम आदि की दक्षिणा दी ॥२॥

जिन भीष्म ने मृतक श्राद्ध की अनित्यता सुनाई और जिन राजा युधिष्ठिर ने श्राद्ध की अनित्यता को जान लिया फिर वे दोनो खुद ही श्राद्ध करें, ज़रा यहां पर भी तो कुछ बुद्धि व्रजमोहन झा को लड़ानी चाहिये थी कि जो श्राद्ध को मानता ही नहीं वह श्राद्ध को कैसे करेगा। इन दोनों के द्वारा श्राद्ध का होना स्पष्ट प्रकट करता है कि श्राद्ध वैदिक है।

निमि से मृतक श्राद्ध का आरम्भ होना वही बतलावेगा कि या तो जिसने महाभारत न पढ़ा हो और या जो हठ रूप भूत के वश में पड़कर धर्माधर्म को तिलाञ्जलि दे चुका हो। महाभारत में निमि का कथा इस प्रकार लिखा है—

स्वायंभुवोऽत्रि कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान्।
तस्य वंशे महाराज दत्तात्रेय इति स्मृतः ॥४॥
दत्तात्रेयस्य पुत्रोऽभून्निमि नाम तपोधनः।
निमेश्चाप्यभवत्पुत्रः श्रीमान्नाम श्रियावृतः ॥५॥
पूर्णे वर्षसहस्रान्ते सकृत्वा दुष्करं तपः।
कालधर्मपरीतात्मा निधनं समुपागतः ॥६॥

निमिस्तु कृत्वा शौचानि विधिदृष्टेन कर्मणा ।
संतापमगमत्तीव्रं पुत्रशोकपरायणः ॥७॥
अथ कृत्वोपहार्याणि चतुर्दश्यां महामतिः ।
तमेव गणयन् शोकं विरात्रे प्रत्यबुध्यत ॥८॥
तस्यासीत्प्रतिबुद्धस्य शोकेन व्यथितात्मनः ।
मनः संहृत्य विषये बुद्धिर्विस्तारगामिनी ॥९॥

भा०—हे जनमेजय ! स्वयंभू ब्रह्मा के पुत्र अत्रि ऋषि प्रतापी हुये उन्हीं के वंश में दत्तात्रेय हुये हैं ॥४॥ दत्तात्रेय के निमि नामक पुत्र हुआ और निमि के तेजस्वी कान्तिवान् श्रीमान् नामक पुत्र हुआ ॥५॥ उस श्रीमान् ने एक सहस्र वर्ष तप किया तप करके मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥६॥ उनके पिता निमि ने शौचादि क्रिया की और विधि (ब्रह्मा) के दिखलाये इस पुत्रशोक रूप कर्म से तीव्र शोक से दुखित हो गये ॥७॥ चतुर्दशी को

श्राद्धादि क्रिया कर सो गये प्रातःकाल जब उठे तब होश आया ॥८॥ शोक से दुखित हुआ जब उसकी बुद्धि ठीक हुई.......... ॥९॥

यह कथा पूर्व का है आगे की कथा में राजा ने इसी पश्चात्ताप पर कहा है कि मैंने जो श्राद्ध किया यह विधि रहित है करना चाहिये था अमावस्या को किन्तु पुत्रशोक में बेहोश होकर कर दिया चतुर्दशी को अब इनके ये दो श्लोक हैं जो समाजी पेश किया करते हैं कि "तत्कृत्वातु०" इनका अर्थ यह है कि राजा धर्मसंकट में पड़ बड़ा दुखित हो पश्चात्ताप करने लगा और विचार करने लगा कि ऐसा पूर्व में किसी ने भी नहीं किया इस अविधि को सुन ऐसा न हो कि ब्राह्मण मुझे शाप दे दें। यह लेख महाभारत का है। व्रजमोहन झा ने अपने मन से यह बतलाया कि मृतक श्राद्ध यहां निमि से चला। जो बात कथा में नहीं उसको अपने आप मिथ्या कल्पना करके आगे रखना निःसन्देह धोखा देना

यह आर्यसमाज का इक्कीसवां पराजय है।

(२२) उतथ्य और ममता की कथा को आगे रख पहिले शास्त्रार्थ में जिस महाभारत को भ्रष्ट बतलाया जाता था आज

उसी महाभारत को प्रमाण मान उससे मृतक श्राद्ध की अनित्यता सिद्ध की जाती है। जो महाभारत ता० ७ अप्रैल सन् १९१८ को अमान्य और भ्रष्ट था आज ढाई हफ्ते के अन्दर ही वह आर्यसमाज को वेद से अधिक प्रामाणिक होगया। रोज २ नित नये रंग बदलना, काम पड़ने पर महाभारत को प्रमाण मानना यह आर्यसमाज का बाईसवां पराजय है।

(२३) चतुर्थ पत्र में ब्रजमोहन झा ने एक तर्क और उठाया वह यह कि श्राद्ध कर्म करे पुत्र और फल मिले पिता को। हम वेद के आगे तर्क को कोई चीज़ नहीं समझते इस कारण हमने उसका उत्तर नहीं दिया, इससे कोई मनुष्य यह न समझ बैठे कि सनातन धर्म के पास इसका कोई उत्तर ही नहीं था किन्तु हम अपने सिद्धान्त के अनुसार ही चले। हमारा तो यह सिद्धान्त है कि यदि तर्क से वेद कटे तो तर्क झूठा-वेद सच्चा। हम समझ लेते हैं कि तर्क में इतनी शक्ति नहीं जो वेद के सिद्धान्त तक पहुंच सके। किन्तु ब्रजमोहन झा ने यहां पर तर्क से वेद सिद्धान्त को काटने का साहस किया है इससे यदि हम रेलबाजार आर्यसमाज को वेद विरोधी नास्तिक समाज कहें तो क्या कोई अत्युक्ति है! तर्क को आगे रख कर मान्य ईश्वरीय ज्ञान वेद

को मिथ्या सिद्ध करने का साहस करना यह आर्यसमाज का तेईसवां पराजय है

(२४) यदि कोई सज्जन यह कहे कि सनातन धर्म के पास इसका कोई उत्तर नहीं ऐसे सज्जनों के तोष के लिये हम कुछ दिग्दर्शन कराते हैं देखिये—

अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत् १ । १०५

अर्थ—कर्ता से भिन्न को भी कर्म के फल का भोग होता है अन्न की भांति से ।

सांख्यदर्शन इतना ही लिख कर नहीं रह गया, आगे देखिये-

प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्याससिद्धिः २ । ५

यद्यपि वास्तव में प्रकृति ही सृष्टि रचना करती है तथापि सृष्टि करने (रचने) में नाम ईश्वर का होता है ।

व्याकरण में एक सूत्र है—

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १ । ३ । ७२

स्वरित स्वर इत हो जिसका और अकार अक्षर इत हो जिसका ऐसे धातु से आत्मने पद हो यदि क्रिया फल कर्तागामी हो तो

जहां पर क्रिया फल कर्त्ता से भिन्न में जाता है वहां पर इन धातुओं को परस्मैपद होता है।

जिस समय पशुओं में रोग आता है उस समय रोग के दूर करने के लिये एक यज्ञ बतलाया है उसका मन्त्र नीचे लिखते हैं—

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय
प्रभरामहे मतिः। यथा शमसद्द्विपदे
चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥ यजु० १६।४८

शान्ति करता है एक मनुष्य और रोग दूर होता है ग्राम के पशुओं का।

संसार में देखिये—(१) भोजन बनावे रसोइया और पेट भरना फल स्वामी को प्राप्त हो, (२) संसार में सिपाही जाकर लड़ते हैं और उस युद्ध का फल राजा को होता है, (३) ठाकुर गदाधरसिंह ने अपने शरीर से दो लाख रुपया कमाया, रुपये का भोग कुछ भी न भोग पाया कि वह मर गये अब उनका रुपया पुत्र ने पाया पुत्र उस रुपये से गुलछर्रे उड़ा रहा है क्या यहां पर भी अन्य के कर्म का फल अन्य को नहीं मिला, (४)

सेठ जौहरीमल की मृत्यु हो गई क्या करें इसके न तो कोई पुत्र ही है और न कोई वंशज और रुपया २० लाख नकद छोड़ गया अब वह रुपया किसका ? शहनशाह का । वाह वाह ! कमावे कोई उड़ावे कोई (५) गिरधारी ने बम्बई को सरसों लादी रेलवे कर्मचारियों की गलती से माल की चोरी हो गई, सेठ साहिब ने नालिश करके नुकसान ले लिया, गलती नौकरों की और नुकसान देना पड़ा रेलवे कम्पनी को, (६) मोहनलाल ने व्यभिचार किया इसी से उसके पुत्र को पैदा होते ही गर्मी का रोग चला। बाप करे बेटा भरे. (७) दिल्ली दरबार में हमारे दयालु बादशाह ने पुण्यार्थ ५० लाख रुपया विद्या-फण्ड में दिया उसी रुपये से गरीब प्रजा के बच्चे पढ़ रहे हैं, (८) संसार में कई एक मनुष्य दिलतोड़ परिश्रम से पुस्तकें तयार करते हैं इनके द्वारा ज्ञान फल प्राप्त होना है उनको कि जो इन पुस्तकों को पढ़ते हैं । महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी ग्रन्थ को बनाया उसका फल विद्वान् होना पाणिनि को न होकर पाठकों को ही होता है । समाजी कहते हैं कि सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द ने बनाया, स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में एक स्त्री के ११ पति लिखे । ११ पति करने लिखे स्वामी दयानन्दजी ने और करने पड़ेंगे आर्यसमाजियों

की स्त्रियों को। यदि वास्तव में एक के लिये का फल दूसरों को नहीं होता तो ऐसी दशा में ये स्त्रियें भी कह उठेंगी कि स्वामी दयानन्दजी ने जो एक कम एक दर्जन पति लिखे हैं वे हम न करेंगी किन्तु स्वामी दयानन्द ही करें क्योंकि जो कर्त्ता है वही भर्ता है, (९) एक रोज जाड़े के मौसम में बाबू छज्जू रामजी धूप में बैठे बैठे तेल लगा रहे थे और उनके पास ही एक दोना दही रक्खा था कि जो इन्होंने अभी बाजार से चार पैसे का मंगवाया है। ये महात्मा तेल भी लगाते जाते हैं और अपने किसी मित्र से वार्त्तालाप भी करते जाते हैं। इनको बातों में लगा हुआ देख एक कौआ टूट पड़ा और उस दही में से एक चोंच भर कर ले गया। यह हाल देख कर बाबू छज्जूराम को पश्चात्ताप हुआ और क्रोध आया, मन ही मन में विचारने लगे कि यदि यह कौआ अब के आवे तो फिर हम इसके प्राण ही लेवें, थोड़ी देर के बाद जब हाथ में पत्थर छिपा कर बाबू साहब बातों में लग गये कि काक फिर आया। जब इन्हों ने काक को आता देखा तो हाथ का पत्थर बड़े जोर के साथ उस काक को मारा (संसार में कहावत है कि मनुष्यों में नौआ और पक्षियों में कौआ, ये बड़े चालाक होते हैं) अपनी होशियारी से काक

साहब तो पत्थर बचा गये किन्तु वह पत्थर सामने आते हुए बाबू पोल्हूराम की आंख में इतने ज़ोर से बैठा कि दहने फाटक का सफ़ाया हो गया। अब इन बाबू व्रजमोहन झा से पूछिये कि यहां पर अन्य के कर्म का फल अन्य को मिला या नहीं? दही खायाकौआ ने और एक आंख से हाथ धोने पड़े बाबू पोल्हूराम को। जब संसार में एक मनुष्य के कर्म का फल दूसरे को मिल जाता है तो फिर यहां पर शंका कैसी?

शास्त्रों को न पढ़ना और अपने मन से शंकाओं को उठा कर वेद का खण्डन करना महापाप है। इसके ऊपर मनु ने लिखा है कि धर्म का निर्णय सर्वदा वेद और धर्मशास्त्र से करना, क्योंकि इन्हीं दोनों से धर्म निकला है, जो मनुष्य तर्क उठा कर वेद और धर्मशास्त्र का खण्डन करता है सज्जन लोग उसका बहिष्कार करदें, क्योंकि ऐसा करने वाला वेदनिंदक नास्तिक है। मनु के इस लेख में बंध कर न चलना, धर्मशास्त्र के विरुद्ध आवाज़ उठाना, आर्यसमाज की नास्तिकता का प्रकट करने वाला

यह चौबीसवां पराजय है।

यहां तक हमने उन प्रमाणों को दिखलाया कि जो आर्यसमाज ने सनातनधर्म के आगे रक्खे और सनातनधर्म की तरफ़

से इनका उत्तर होने पर आर्यसमाज फिर कुछ भी न बोल सका। अब आगे वे प्रमाण दिखलाये जाते हैं कि जो सनातन धर्म ने आर्यसमाज के आगे रक्खे। पाठक ध्यान से पढ़ें।

(२५) पहिले पत्र में सनातनधर्म ने "वैवस्वतं" इस मन्त्र से पितरों का राजा यम और श्राद्ध में उसको पितरों के साथ बलिदान देना बतला कर कहा कि यमराज के यहां मृतक ही पितर जाते हैं और उन्हीं का यह श्राद्ध है, आर्यसमाज के पास इसका क्या उत्तर है? इस लेख को देख कर चतुर्थ पत्र तक आर्यसमाज ने कुछ भी उत्तर न दिया। उत्तर न देना शास्त्रार्थमें मान लेना समझा जाता है अतएव यह **आर्यसमाज का पच्चीसवां पराजय है**। क्या कोई आर्यसमाजी भूमंडल पर ऐसा है जो इनका जवाब दे? प्रलय तक भी कोई आर्यसमाजी इस पर लेखनी नहीं उठा सकता फिर आर्यसमाज का घोरतर पराजय न समझा जावे तो क्या समझा जावे।

(२६) सनातनधर्म ने द्वितीय पत्र में "पिता यस्य निवृत्तः स्यात्" इस मनु के श्लोक से यह दिखलाया कि मनु कहते हैं कि जिसका पिता मर गया हो और पितामह जीवित हो तो पिता का पिण्ड रख कर पितामह के बाप का रक्खे। मनु का यह लेख

मृतकों के पिण्ड रखवा कर मृतक श्राद्ध सिद्ध करता है। इसको सुन कर आर्यसमाज ने दम न मारा, चुप होकर बैठ गया। दूसरे के कथन का उत्तर न देना क्या हार नहीं है? अवश्य है। **यह आर्यसमाज का छब्बीसवाँ पराजय है।** क्या किसी भी आर्यसमाजी में इसके उत्तर देने की शक्ति है? यदि है तो कृपा कर वह अभी उत्तर दे।

(२७) सनातनधर्म ने द्वितीय पत्र में लिखा स्वामी दयानन्द ने संस्कारविधि के नामकरण में लिखा है कि "जिस बालक का जन्म मघा नक्षत्र में हुआ हो एक आहुति मघा के नाम की और एक आहुति मघा के स्वामी पितरों के नाम की तथा जिस बालक का जन्म अमावस्या तिथि में हुआ हो एक आहुति अमावस्या के नाम की और दूसरी आहुति अमावस्या के स्वामी पितरों के नाम की देनी चाहिये"। निःसन्देह ये आहुतियें जीवित पितरों की नहीं हैं। यदि आप इन आहुतियों को जीवित पितरों की मानते हो तो फिर आहुती पाने वाले जीवित पितरों का नाम और पता बतलाओ। इतना सुन कर आर्यसमाज ने ऐसी मौनता धारण की कि शास्त्रार्थ के अन्त तक नहीं बोला और आगे को जब तक आर्यसमाज जीवित रहेगा बोल न सकेगा।

क्या मजे की बात है कि जिन स्वामी दयानन्द को देशोद्धारक और महर्षि आदि की पदवियां दें उनके ही लेख को मिथ्या समझें। यहां पर तो स्वामी दयानन्द के लेखसे ही मृतक श्राद्ध सिद्ध है। यह आर्यसमाज का सच्चाईसहां पराजय है। स्वामी दयानन्द के लेख का अपमान करना आर्यसमाज के लिये पाप है। क्या आर्यसमाज इसके ऊपर पश्चात्ताप करता हुआ प्रायश्चित्त करेगा? आज तो आर्यसमाज का प्रत्येक मनुष्य मूर्ख रहने पर भी अपने को स्वामी दयानन्द से विद्वान् मानता है फिर प्रायश्चित्त कैसा?

(२८) सनातनधर्म ने कहा कि स्वामी दयानन्दजी ने संस्कार विधि में अपसव्य हो दक्षिण की तरफ मुख कर "ओं पितरःशुन्धध्वम्" इस मन्त्र को पढ़ जल पृथिवी में छोड़ दो लिखा है निःसन्देह यह तर्पण मृतक पितरों का है इसके ऊपर तृतीय पत्र में आर्यसमाज ने लिखा कि "ओं पितरः शुन्धध्वम्" इसमें मृत शब्द भी नहीं है प्रत्युत वहां भी जीवितों से ही तात्पर्य है। इसके ऊपर तृतीय पत्र में सनातनधर्म ने कहा कि यदि "ओं पितरः शुन्धध्वम्" में जीवितों का तर्पण है तो अपसव्य क्यों? दक्षिण की तरफ मुख क्यों? क्या समस्त पितर नवाब

हैदराबाद के राज्य में मुलाज़िम हो गये हैं जो दक्षिण की तरफ मुख किया जाता है? इस के ऊपर चतुर्थ पत्र में आर्यसमाज ने कहा कि दक्षिण दिशा की आपत्ति से और प्रकृत विषय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं, तर्पण का श्राद्ध से कुछ सम्बन्ध ही नहीं। पहिले तो आर्यसमाज ने बतलाया कि यहां पर जीवितों का ही तर्पण है किन्तु जब हमने अपसव्य और दक्षिण मुख पर आपत्ति की तब आर्यसमाज कहता है कि इसका श्राद्ध से कुछ संबन्ध ही नहीं। आर्यसमाज को इतना भी होश न रहा कि तृतीय पत्र में हम इस मन्त्र को जीवितों में लिख आये हैं फिर अब कैसे लिख सकते हैं कि इसका कुछ सम्बन्ध ही नहीं। मालूम होता है कि चतुर्थ पत्र के समय आर्यसमाज श्राद्ध का शास्त्रार्थ न समझ मूर्तिपूजा का समझ गया है, इसको हमने शास्त्रार्थ में लिख भी दिया है। अब शास्त्रार्थ के लिये लिखे पढ़े मनुष्य की कोई आवश्यकता नहीं आगे से आर्यसमाज ऐसे पुरुष को खड़ा किया करे प्रत्येक उत्तर में केवल इतना कह दिया करे कि इसका उससे कुछ सम्बन्ध नहीं है। धन्य है इस उत्तर को और उत्तर देने वाले झा साहब को। स्वामी दयानन्द के इस तर्पण का उत्तर न उस समय दिया है न आगे

को कोई दे सकता है। स्वामी दयानन्दजी का लेख ही इनका शत्रु होगया है। क्या इसके ऊपर आर्यसमाज आगे को भी उत्तर देने का साहस करेगा। यदि नहीं करेगा तो फिर हम क्यों न कहें कि **यह आर्यसमाज का अट्ठाईसवां पराजय है**॥ यह समाज के लिये लज्जा की बात है कि स्वामी दयानन्दजी तो मृतक पितरों का तर्पण लिखें और ब्रजमोहन झा उस पर बन्दूक चलावें फिर आर्यसमाज कानपूर ब्रजमोहन झा की बात को सच्ची माने तथा स्वामी दयानन्द का समस्त लेख झूठ !

(२९) तृतीय पत्र में हमने "उदन्वतीद्यौ०" इस मन्त्र से दिखलाया कि प्रथम जो आकाश है उस को वेद उदन्वती लिखता है इसमें जल रहता है इसी से इसका नाम उदन्वती है। इसके ऊपर दूसरा आकाश पीलुमती है उस में सूर्य चन्द्र स्थित हैं इस कारण इस को पीलुमती माना है। इसके ऊपर तीसरा आकाश है जहां पर सूर्यादि का तेज किरण पड़ती हैं वेद कहता है कि इस तीसरे आकाश में पितर रहते हैं यहां पर मृतक ही पितर रह सकते हैं अतएव वेद मृतकों का श्राद्ध मानता है। इसके ऊपर आर्यसमाज ने कहा कि वहां सूर्य की किरणें रहती हैं उन्हीं का

नाम पितर हैं। सूर्य की किरणों को पितर कहते हैं इसको आर्यसमाज ने केवल लिख तो दिया किंतु प्रमाण नहीं दिया फिर जो "स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः" इस मन्त्र में खाद्य पदार्थ पितरों को देना लिखा है तो क्या आर्यसमाज सूर्य की किरणों को भोग लगाता है? यदि ऐसा है तब तो यह मूर्ति पूजक है। बातें तो बहुत सी बनाईं किन्तु फल निकला यह कि मूर्तिपूजन वेद से सिद्ध हो गया। स्वामी दयानन्दजी का सिद्धान्त था कि वेदों में मूर्तियों का पूजन नहीं किन्तु आज ब्रजमोहन ने दिखला दिया कि वेद में सूर्य की किरण को भोग लगाना लिखा है। ब्रजमोहन का प्रत्येक लेख में स्वामी दयानन्द के लेख को काट कर आर्यसमाज को दिखलाते हैं कि मैं दयानन्द से अधिक विद्वान् हूं। कुछ भी हो स्वामी दयानन्द के मूर्ति खण्डन सिद्धान्त का उड़ाना **यह आर्यसमाज का उनतीसवां पराजय है।**

(३०) फिर अथर्व वेद में इस मन्त्र के आगे "ये नः पितुः पितरो ये पितामहा०" इस मन्त्र में दिखाया है कि जो हमारे पिता के पितर हैं और जो हमारे पितामह हैं, जो पितृलोक में गये है, जो पृथिवी को और द्यौ लोक को प्राप्त हो रहे हैं उन

पितरों के निमित्त हम अन्न और नमस्कार विधान करते हैं। पहिले मन्त्र में तो सूर्य की किरणें पितर बनी थीं अब क्या चन्द्रमा की उजियाली पितर बनेगी और वही बाप दादा हो जायेगा? वेदों के मन्त्रों का अर्थ न करना, आगा पीछा न देखना, और जान बचाने के लिये कुछ का कुछ कह देना

यह आर्य समाज का तीसवां पराजय है।

(३१) सनातनधर्म का तरफ से द्वितीय पत्र में "यस्यास्येन सदाश्नन्ति" मनु का प्रमाण देकर दिखलाया गया कि ब्राह्मणों के मुख का खाया हुआ भोजन पितरों को पहुंच जाता है यह मृतकों में ही घटता है अतएव श्राद्ध मृतकों का ही होना चाहिये इसके ऊपर आर्यसमाज ने कहा कि हम मनु को प्रमाण ही नहीं मानते। क्या मजे की बात है मनु को लेकर आर्यसमाज ने आचार्य को पितर बतलाया और मनु को ही लेकर जनकादि पांच पितर बतलाये किन्तु जब हमने मनु का प्रमाण दिया तब कहा कि हम नहीं मानते। इसके ऊपर हमने कहा कि सत्यार्थप्रकाश में ५० से अधिक मनु के श्लोक हैं पहिले उनको निकाल डालिये यह नहीं होगा कि कड़ुवा २ थू मीठा २ हड़प। फिर आर्यसमाज ने लिखा कि मनु को वेदानुकूल होने पर हम

प्रमाण मानते हैं। प्रथम तो सत्यार्थप्रकाश में लिखे मनु के श्लोकों को कोई आर्यसमाजी सिद्ध करे कि ये वेदानुकूल हैं। (२) पं० राजाराम (प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर) ने मनु के समस्त श्लोकों को प्रमाण माना है फिर आप क्यों नहीं मानते (३) मनु का यह श्लोक जैसा है वैसा ही अथर्व में ब्राह्मण भोजन का "इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु" मन्त्र आता है फिर यह श्लोकप्रमाण क्यों नहीं ? जब कोई उत्तर न सूझा तब मन्त्री जी ने प्रमाण का अड़ंगा लगाया अतः यह **आर्यसमाज का इकतीसवां पराजय है।**

(३२) आर्यसमाज ने यह यह भी कहा कि यदि मनु के कहने से मृतक श्राद्ध मानोगे तो फिर मनु में लिखा मांस से श्राद्ध करना होगा। हमने इसके ऊपर कहा कि मांस से श्राद्ध उस देश वाले करेंगे जहां अन्न बिलकुल न होता हो। इसके ऊपर समाज ने कहा मनु का प्रमाण दो हमने प्रमाण में "आनन्त्यायैव" इस श्लोक को लिखा कि मांस से अन्न का श्राद्ध उत्तम है यहाँ पर फिर आर्यसमाज का मुंह बन्द हो गया यह **आर्यसमाज का बत्तीसवां पराजय है।**

(३३) फिर हमने "अपेमं जीवा अरुधन्" मन्त्र से मृतक श्राद्ध बतलाया, आर्यसमाज ने इसको देखा भी नहीं **यह आर्यसमाज का तेंतीसवां पराजय है।**

(३४) हमने अथर्व काण्ड १८ का मन्त्र "अधोमृताः पितृषु सम्भवन्तु" प्रमाण देकर मृतक पितरों का श्राद्ध बतलाया ! समाज की ओर से ब्रजमोहन झा ने कहा कि आपने मंत्र का पता नहीं बतलाया हम क्या उत्तर दें। इसी मंत्र का नहीं किन्तु हमारी ओर से शास्त्रार्थ में किसी भी मन्त्र का पता नहीं बतलाया गया फिर यह प्रश्न और मन्त्रों पर क्यों न उठा ? इसका कारण यह है कि इस मंत्र का जब कुछ उत्तर न सूझा तब पते के बहाने से टाला। सभी पण्डित इस बात को जानते हैं कि मनुस्मृति के अ० ३ और यजुर्वेद के अध्याय १६ तथा अथर्व वेद के काण्ड १८ में मृतक श्राद्ध का वर्णन है, फिर पता पूछने का क्या काम ! इससे स्पष्ट विदित होता है कि शास्त्रार्थ करने वाले महाशय नये उम्मेदवार हैं इसी से आप को मन्त्र का पता नहीं मिलता। इस मन्त्र का जवाब न देना **यह आर्यसमाज का चौंतीसवां पराजय है**

(३५) फिर हमने "ये अग्निदग्धाः" मन्त्र देकर दिखलाया कि इस मन्त्र में श्राद्धकर्त्ता ईश्वर से प्रार्थना करता है कि जो पितर अग्नि में जले और जो अग्नि में नहीं जले तथा जो स्वर्ग में स्वधा रूप अन्न को खाते हैं, हे परमात्मन् तू उन सब को जानता है, हमारी हवि के भोक्ता उनको कर। आर्यसमाज ने इस के ऊपर कोई उत्तर नहीं दिया। यह **आर्यसमाज का पैंतीसवां पराजय है**

(३६) इसके अनन्तर हमने "प्रेहि "प्रेहि" इस मन्त्र से पितरों का यम के यहाँ जाना बतलाया। आर्यसमाज ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। यह **आर्यसमाज का छत्तीसवां पराजय है।**

(३७) इसके अनन्तर हमने यह दिखलाया कि स्वामी दयानन्द ने जो 'पंचमहायज्ञ विधि' बनाई और वह मुन्शी नवलकिशोर के यहां छपी है उस में "एषमपसव्येन च त्रीँस्त्रीन जलाँजलीन्दद्यात्पितृभ्यः" अपसव्य होकर पितरों के लिये तीन तीन अंजुलि जलदान देना लिखा है, यह तर्पण तमृकों का है। आर्यसमाज ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। यह **आर्यसमाज**

का सैंतीसवां पराजय है।

(३८) इसके पश्चात् हमने लिखा कि स्वामी दयानन्दजी ने "सानुगाय यमाय नमः" इस मन्त्र से एक ग्रास नित्य निकाल कर दक्षिण की तरफ रखना लिखा है। यह श्राद्ध का अङ्ग यमराज के नाम की बलि मृतक श्राद्ध सिद्ध करती है। आर्यसमाज ने इसका कुछ भी उत्तर न दिया यह आर्यसमाज का अड़तीसवां पराजय है

(३९) हमने यह भी दिखलाया कि स्वामी दयानन्द जी ने "ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः" यजुर्वेद अ० २ के इस मन्त्र को पढ़ कर दक्षिण दिशा में पितरों के निमित्त एक ग्रास नित्य रखना लिखा है देखो 'संस्कारविधि'। निःसन्देह यह श्राद्ध मृतक पितरों का है। आर्यसमाज ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। यही बात नहीं है कि उस समय उत्तर सूझा ही नहीं अब कोई दे देगा। हमारा तो दावा है कि जब तक संसार है तब तक कोई आर्यसमाजी हमारे ऊपर लिखे समस्त प्रश्नों में से हो एक का भी उत्तर नहीं दे सकता यह आर्यसमाज का उनतालीसवां घोर तर पराजय है

(४०) हमने सबसे प्रथम मृतकश्राद्धसिद्धि में "ये निखाता ये परोप्ता" मन्त्र दिया इस मंत्र का सीधा २ अर्थ यह है कि जिन पितरों के शरीर गाड़े गये और जिन पितरों के शरीर पड़े रह गये तथा जिन पितरों के शरीर फूंके गये और जिन पितरों के शरीर फेंक दिये गये हे ईश्वर उन पितरों को हवि खाने के लिये तू यहां बुला ला। इस अर्थ के ऊपर प्रथम आर्यसमाज ने यह आपत्ति की कि क्या पितर गाड़े भी जाते हैं ? हमने उत्तर दिया कि हां, आपत्तिकाल में गाड़े जाते हैं, जैसे घोर संग्राम में। आर्यसमाज ने गाड़ने पर आपत्ति नहीं की। गाड़ने के विषय पर उत्तर न दे सकना **यह आर्यसमाज का चालीसवां पराजय है।**

इसी मन्त्र को लेकर कई एक यूरोपनिवासी अंग्रेजों ने लिखा है कि हिन्दुओं के यहां पहिले मुर्दे गाड़ने का भी चाल था असली बात को न समझ कर उन्होंने चाल समझ ली।

(४१) आर्यसमाज ने मन्त्र का अर्थ किया कि जो कंद आदि मूल भूमि में गाड़े जाते हैं, जो पड़े रह जाते हैं, जो भूंजे जाते हैं और जो फेंक दिये जाते हैं हे ईश्वर खाने के लिये तू उन को प्राप्त कर।

आर्यसमाज इस मन्त्र के ऊपर इतना घबरा गया कि कुछ का कुछ कहने लगा। हम इस अर्थ की मिथ्या कल्पना (बनावट) को आप के आगे रखते हैं आप विचारिये कि आर्यसमाज का अर्थ ठीक है या अनर्गल—

(१) इस मन्त्र का देवता पितर है, जो मन्त्र का देवता होता है उसी का उसमें वर्णन होता है, जब पितर देवता है तो फिर कन्दों का वर्णन इसमें किस प्रकार निकलेगा ? हां, यदि इस मन्त्र का कन्द देवता होता तो उसका वर्णन इसमें होता, देवता के विरुद्ध वेद के किसी मन्त्र का अर्थ नही होता यह वैदिक शली है किन्तु ब्रजमोहन झा ने वेद की शैली और मन्त्र के देवता दोनों पर आरा चलाया जिसको देख कर आस्तिक वैदिक लोगों को बड़ा दुःख है।

(२) पं० तुलसीराम जी ने इस मन्त्र का अर्थ पितृपरक करते हुये लिखा है कि जिन पितरों के शरीर गाड़े गये, या पड़े रह गये या फूंके गये अथवा फेंक दिये गये हे अग्नि हमारे हव्य के पदार्थों को तू उनको पहुंचा दे। ब्रजमोहन झा का अर्थ पं० तुलसीराम के अर्थों के एक २ अंग को काट रहा है। हम आर्यसमाज ठठेबाजार से पूछते हैं कि क्या पं० तुलसीराम का अर्थ

सोलह आने असत्य है ? यदि नहीं तो उनके अर्थ के विरुद्ध इस मन्त्र में कन्दों का वर्णन कैसे आ जावेगा ?

(३) इस मन्त्र के आगे "ये अग्निदग्धा" मन्त्र में यह कहा है कि जो पितर अग्नि में जले, और जो अग्नि में नहीं जले जो स्वर्ग में बैठे हुये स्वधा का आस्वादन करते हे हेईश्वर हमारे हव्य को तुम उनको सेवन कराओ' क्या इस मन्त्र में स्वर्ग में रहना और स्वधा का खाना यह कन्दों में ही घटेगा इसका आर्यसमाज के पास क्या उत्तर है ?

(४) "ये निखाता" इस मन्त्र में 'पितृन्' विशेषण है और निखाता, परोप्ता, दग्धा चोद्धिता ये चार व्यधिकरण विशेषण है अर्थात् मौसूफ 'पितृन्' शब्द है और ये चारो सिफत हैं, ब्रज-मोहन झा ने 'पितृन्' विशेष्य को छोड़ दिया, बिना विशेष्य के विशेषण किसको कहेगा इस कारण आर्यसमाज ने कन्द विशेष्य अपनी तरफ से मिलाया, जो विशेष्य ईश्वर ने वेद मन्त्र में नहीं डाला उसको आर्यसमाज ने अपनी तरफ से डाल कर ईश्वर की भूल को दुरुस्त कर दिया। क्या मजे की बात है कि अपनी तरफ से विशेष्य मिला कर वेद के अर्थ किये जाते हैं और ईश्वर को मूर्ख सिद्ध करके ब्रजमोहन झा अपने आप को

ईश्वर से अधिक विद्वान् होना सिद्ध करते हैं, यह शोक है !

एक आर्यसमाजी कहता था कि इस मन्त्र में पत्थर के कोयलों का वर्णन है अर्थात् जो कोयले गढ़े में गाड़े गये या जो पड़े रह गये और जो जल गये, जो फेंक दिये गये हे ईश्वर तू उन कोयलों को रोटी पका कर खाने के लिये हमको ला दे। हमने कहा कि देवता ! इसमें ऐसा कौन सा पद है कि जिसका अर्थ कोयला विशेष्य करके शेष चार विशेषण बनाये जावेंगे ? उसने कहा कि तुम्हें इस बात से क्या प्रयोजन तुम तो सनातन-धर्मी हो, हमने तो आर्यसमाज की प्रतिनिधि के लिये यह अर्थ लिखा है। हमने हँस कर कहा कि इसको प्रतिनिधि सभा कैसे मान लेगी ? उसने जवाब दिया कि जब आर्यसमाज कानपुर ने ब्रजमोहन झा के कहने पर कन्दा अर्थ मान लिया है तो फिर हमारा किया कोयला अर्थ क्यों न माना जावेगा । इन बनावटी अर्थों से ब्रजमोहन झा का वेद पर कुठाराघात करना हमको तो दुःखता ही है किन्तु आर्य विद्वानों के कलेजे में भी बरमा की भांति छेद करता जाता है।

(५) फिर अर्थ भी कैसा कि हे ईश्वर जो कन्दे गाड़े गये उनको खाने के लिये हमको प्राप्त करदे क्या मजे की बात

है। ये तो कन्दा गाड़ आवें और ईश्वर खोद कर निकाल लावे एवं इन के आगे रखदे। और जो कन्दे भूने गये हैं हे ईश्वर तू उनको लादे। नहीं मालूम भाड़ में से लावे या बेचने वाले के उठा लावे। कहीं से लावे किन्तु इनको ला दे। ब्रजमोहन झा को इतना पता नहीं कि जो कहीं ईश्वर ने भुने हुए कन्दों को उठाया और उसी समय आगया पुलिस का कानिस्टेबिल तब तो ईश्वर चोरी में धर लिया जावेगा, सज़ापाने पर फिर तुम्हें कन्दा कौन ला कर देगा। आगे का अर्थ सुनो जो कन्द पड़े रह गये हैं ईश्वर खाने के लिये तू उनको ला दे। कहाँ पड़े रह गये? और तुमने क्यों छोड़े? इसका भी पता बताओ? तथा जो कन्द फेंक दिये गये हे ईश्वर खाने के लिये तुम उन्हें ले आओ। तुमने क्यों फेंके! और फिर अब ईश्वर से क्यों मंगवाते हो? क्या ईश्वर तुम्हारा नौकर है जो तुम्हारे कहने से दौड़ा दौड़ा फिरेगा? अफसोस तो यह है कि वह ईश्वर सब दिन आर्यसमाज के लिये दौड़ दौड़ कर कन्द लावे किन्तु आर्यसमाज इतने पर भी उसको निराकार ही कहे।

(६) फिर यह भी तो पता लगे कि वह ईश्वर कन्द बीनकर आर्यसमाजियों के खाने के लिये कब लाता है? किसी संस्कार

में या किसी गुरुकुल में उत्सव के समय अथवा शास्त्रार्थ में। ये पता न लगा कि ईश्वर चुपचाप छिपा हुआ आकर आर्यसमाजियों को कन्द फल दे जाता है और हमको क्यों नहीं देता ? इसका भी उत्तर आर्यसमाज को ही देना होगा।

(७) फिर आर्यसमाजी लोग ईश्वर से कन्द ले आने की प्रार्थना किस समय करते हैं ? फिर यह प्रार्थना पृथ्वी के समस्त आर्यसमाजी करते हैं या अकेले ब्रजमोहन झा ही करते हैं ? और भी करते हैं या सब अर्थ बनावटी है।

इत्यादि लेखों से सिद्ध है कि ब्रजमोहन झा का यह अर्थ बनावटी और निःसार है वास्तव में "येनिखाता" का कुछ भी उत्तर आर्यसमाज न दे सका और न आगे को दे सकता है अतएव

यह आर्यसमाज का इकतालीसवां पराजय है।

प्रिय पाठकवर्ग ! आप समझ सकते हैं कि इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज ने किस प्रकार नीचा देखा है। अब भी यदि ब्रजमोहन झा तथा अन्य किसी आर्यसमाजी में शक्ति है तो वह इस शास्त्रार्थ के प्रश्नों के उत्तर देने को लेखनी उठावे अन्यथा समझ लिया जावेगा कि आर्यसमाजमत बालू की भीत है और यथार्थ

में है भी ऐसा ही, एवं इसी भय के मारे कोई भी समाजी लेखनी नहीं उठा सकता।

जितने आर्यसमाजी इस शास्त्रार्थ को पढ़ें उनसे प्रार्थना है कि वे अपने पण्डितों तथा प्रतिनिधि सभाओं को मजबूर करें कि वे सब काम छोड़ कर इस पर लेखनी अवश्य चलावें। हमारा विश्वास है कि इतना लिखने पर भी कोई सज्जन लेखनी उठाने का साहस न करेगा, फिर उठाने के लिये या उत्तर माँगने के लिये हमारे पास दूसरा और कौन उपाय है।

द्वितीय शास्त्रार्थ समाप्तः



कानपुर का तृतीय शास्त्रार्थ

विषय—"मूर्ति-पूजा"।

श्रीहरि:

भूमिका

आज के दिन शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा पर है। आर्यसमाज की ओर से कहा गया कि आज बजाय १५ मिनट के २० मिनट का समय होना चाहिये। प्रत्येक पक्ष १५ मिनट में लिख कर ५ मिनट में सुना दे। हमारी ओर से इसको स्वीकार कर लिया गया। फिर आर्यसमाज की ओर से कहा गया कि कल पूर्वपक्ष हमारा था, आज सनातनधर्म का होना चाहिये। इसको भी हमारी ओर से समाजी भाइयों के कथनानुसार स्वीकार कर लिया गया।

इस दिन की एक बात विशेष उल्लेख के योग्य है वह यह कि नियम तो उपरोक्त कथनानुसार यह निश्चय किया गया था कि उभय पक्ष के विद्वान् अपने अपने पर्चे २० मिनट के समय में ही लिखें और लिख कर सुनावें, किन्तु आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले महाशय ब्रजमोहन झा ने इस नियम को पददलित करने

समय कुछ भी संकोच न किया ? झाजीअपने समय में तो लिखते ही थे किन्तु शोक है कि सहस्त्रशःसभ्य जन समुदायके बीच,सब की आंखों में धूल झोंक, निर्भीकता के साथ तीन पत्रे हमारे समय में भी लिखते चले गये ? व्रजमोहन झा का ऐसा कार्य देख लोगोंने हमसे कहा कि आप के पण्डित जी तो नियमानुकूल अपने ही समय पर लिखते और सुनाते हैं किन्तु आर्यसमाज की ओरसे लेखक महाशय अपने और आप के दोनों समय बराबर लिखते ही रहते हैं ऐसा अनुचित व्यवहार देख हमारी ओर से सभा पति जी ! से निवेदन किया गया कि आप की ओर से नियम का उल्लंघन कर अनुचित कार्यवाही की जा रही है,इसे रोकिये। इस समय सभापति जी का कर्तव्य था कि वे झा जी की लेखनी को रोक देते और ऐसे निन्दनीय कार्यपर शोक प्रकट करते किन्तु वे भी ऐसा क्यों करने लगे क्यों कि एक ही थैली के चट्टे-बट्टे ठहरे न ? उलटा सभापति जी ने इशारा किया और कहा कि आप भी लिख सकते हैं।

यह बात बहुत ही अयोग्य हुई है। ऐसा आज तक कहीं भी किसी शास्त्रार्थ में नहीं हुआ। उभय पक्ष के विद्वान् अपने अपने समय में ही लिखा करते हैं। यहां पर जोसभापति जी ने इस को

नहीं रोका और हमको भी आज्ञा दे दी, इससे प्रकट होता है कि सभापति जी को इस विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं था, जैसा समाजी भाइयों ने कहा होगा वैसा ही आप समझे होंगे अथवा पक्षपात के कारण न्याय की मर्यादा नहीं रख सके ?

शास्त्रार्थ के समय हमारी ओर से श्री महराज काल्लूमल जी के प्रसिद्ध संस्कृत पाठशाला के पण्डिताग्रगण्य पं० विश्वम्भरदत्तजी व्याकरणाचार्य व श्रीमान् पण्डिताग्रगण्य पं० दुर्गाचरण जी शुक्ल ज्योतिषाचार्य कर्मकाण्डीय व हनुमानदत्त जी ब्रह्मचारी काशी आदि २ विद्वान तथा आर्यसमाज की ओर से भी अनेक विद्वान उपस्थित थे। हमारी ओर से पं० कालूरामजी शास्त्री तथा आर्यसमाज की ओर से ब्रजमोहन झा जी लिख और सुना रहे थे।

निवेदक- विष्णुदयाल मिश्र

कानपुर का तृतीय शास्त्रार्थ

विषय—'मूर्त्ति-पूजा'।

ता० २० अप्रैल सन् १९१८ ई०

सनातनधर्म (प्रथमवार)

आर्यसमाज मूर्त्तिपूजा का जो खण्डन करता है बड़ा भूल करता है। क्योंकि स्वामी दयानन्द ने भी विविध प्रकार की मूर्त्तियों का पूजन अपने ग्रन्थों में लिखा है। संस्कारविधि[A] में—ओं सानुगाय यमाय नमः। ओं मरुद्भ्यो नमः। इस पंच महा यज्ञ के प्रकरण में यम, मरुत, जल, ओखली, मूसल, लक्ष्मी, भद्रकाली, मकान के देवता को एक २ कौल (ग्रास) दाल भात से बलि देना (भोग लगाना) लिखा है।

A स्वामी दयानन्दजी की बनाई और सम्वत् १९७० में वैदिक प्रेस अजमेर में छपी संस्कारविधि के पृ० १९८ पंक्ति २३

आर्याभिविनय में, वायवायाहि A,, इस सातवें मन्त्र में निराकार ईश्वर को सोमवल्ली के रस का भोग लगाना लिखा

से पृ० १६६ पं० १७ तक पढ़िये हम ज्यों का त्यों पाठ उद्धृत करते हैं—

निम्न लिखित मन्त्रों से बलिदान करे—

ओं सानुगयेन्द्राय नमः ।।इससे पूर्व

ओं सानुगाय यमाय नमः ।।इससे दक्षिण

ओं सानुगाय वरुणाय नमः । इससे पश्चिम

ओं सानुगाय सोमाय नमः ।।इससे उत्तर

ओं मरुद्भ्यो नमः ।।इससे द्वार

ओं अद्भ्यो नमः ।।इससे जल

ओं वनस्पतिभ्यो नमः।।इससे मूसल और ऊखल

ओं श्रियै नमः ।।इससे ईशान

ओं भद्रकाल्यै नमः ।।इससे नैऋत्य

ओं ब्रह्मपतये नमः ।ओं वास्तुपतयेनमः ।।इससे मध्य

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।ओं दिवाचरे भ्यो भूतेभ्योनमः

ओं नक्तं चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।।इनसे ऊपर

ओं सर्वात्मभूतये नमः ।।इससे पृष्ठ

है। संस्कारविधि में "ओं ओषधे त्रायस्व" इस मन्त्र से कुशा से प्रार्थना करनी लिखी है।

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः॥ यजु० अ० ३ इससे दक्षिण

इन मन्त्रों से एक पत्तल या थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना, यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आ जाए तो उसी को दे देना, नहीं तो अग्नि में धर देना।

आयवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः।

तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥७॥ ऋ० १।१।३।१

व्याख्यान—हे अनन्त बल परेश वायो दर्शनीय! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो, हम लोगों ने अपनी अल्प-शक्ति से सोम (सोमवल्ल्यादि) औषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आपके लिए "अरङ्कृताः" अलङ्कृत अर्थात् उत्तम रीत से हमने बनाये हैं और वे सब आप के समर्पण किये गये हैं उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) हम दीनों की दीनता सुन कर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज़ समर्पण करता है उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है वैसे आप हम पर प्रसन्न होओ॥७॥

यह अर्थ स्वामी दयानन्दजी की लेखनी का लिखा हुआ

यजुर्वेद में "घृतेन सीतामधुना A ॥१२। ७०" के मन्त्र में सीता के पटेले (पहटा) पर घी, दूध, जल, शक्कर, शहद चढ़ाना लिखा है जो चाहे आर्याभिविनय में देख ले। कई एक आर्यसमाजी कहा करते हैं कि स्वामी दयानन्द जी ने मन्त्र का अर्थ बिगाड़ दिया। कई एक यह भी लिखा करते हैं कि यहां पर [illegible] पाठ था प्रेस की असावधानी से [illegible] बन गया। किन्तु ये दोनों कथन निरुक्त को देखने से [illegible] हो जाते हैं। जिस प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने [illegible] किया है इसी प्रकार निरुक्त ने "सिर" अर्थात् [illegible] लिखा है देखिये

[illegible] दर्शनीयेन [illegible] पिब शृणु नो ह्वानमिति [illegible] भवति। निरु० अ० ४ पाद १

सम्वत् १९३३ का छपा संस्कारविधि के पृष्ठ [illegible] में स्वामी दयानन्दजी ने इस मन्त्र की [illegible] लिखी है वह यह है "हे [illegible] इस बालक को तू [illegible]"।

A घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना स्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व ॥७०॥

पदार्थः। (विश्वैः) सब (देवैः) अन्नादि पदार्थों की इच्छा

है। संस्कारविधि में "ओं विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि ✻" इस मन्त्र के आगे छुरे को नमस्ते करना और उससे बालक की रक्षा

वाले विद्वान् (मनुष्यैः) मनुष्यों की (अनुमता) आज्ञा से प्राप्त हुआ (पयसा) जल वा दुग्ध से (ऊर्जस्वतीः) पराक्रम संबन्धी (हिरण्ययाना) सोने का सेचन किया हुआ (सोना) पहला (घृतेन) घी तथा (मधुना) शहद वा शक्कर आदि से (समक्तताम्) संयुक्त करो (सोने) पहला (अस्मान्) हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करो। इस हेतु से (पयसा) जल से (अभ्यावर्तस्व) बार बार वर्ताओ ॥३७॥ (देखो वैदिक प्रेस अजमेर में सम्वत् १९६२ में छपा दयानन्द कृत भाष्य)।

✻ छुरे का प्रकरण देखिये—संस्कारविधि पृ० ७४ पंक्ति १८ से २२ तक "ओं विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि। मं० ब्रा० १। ६। ४" इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के "ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः। य० अ० ३ मं० ६३" इस मन्त्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवे तत्पश्चात् ओं स्वधिते मैनं हिंसीः"।

अर्थ—हे छुरे तू विष्णु (ईश्वर) की दाढ़ (भीतरी दांत) है। स्वधिति (तेजधारवाला) तेरा नाम है, शिव तेरा पिता है, मैं

करने की प्रार्थना की है यह सब मूर्तिपूजन है और वेद में भी "तं A यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्" मन्त्र में लिखा है कि ऋषियों और

तुझे नमस्ते करता हूं तू मुझे मत मारना। हे स्वधिते (तेज धार वाले) छूरे तू इस बालक को न मारना, स्वामी दयानन्द जी ने इन तीन मन्त्रों में से दो की तो भाषा नहीं की केवल तृतीय मन्त्र की भाषा की है, स्वामीजी भाषा में लिखते हैं कि "हे स्वधिते इस बालक को हिंसित मत कर" (देखो सम्वत् १९३१ की संस्कार विधि पृष्ठ ४७ पंक्ति १३।१४)।

A तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।

तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये॥ यजु० ३१।९

अर्थ—जो सब से प्रथम उत्पन्न हुआ पुरुष परमात्मा यज्ञायतनार है उसका बर्हि पर प्रोक्षण करते हुए देवता और साध्य तथा जो ऋषि हैं उन्होंने पूजन किया।

इसका शतपथ यह है अथैतमात्मनः प्रतिमामसृजत यद्यज्ञं तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञ इत्यात्मनो ह्येतं प्रतिमामसृजत—शतपथ ११।१।८।३

परमात्मा ने यज्ञ नामक रूप को अपनी प्रतिमा उत्पन्न किया इसी से ईश्वर को यज्ञ स्वरूप कहते हैं (यज्ञो वै विष्णुः) अब

देवताओं ने आरम्भ में परमात्मा का पूजन किया ।
"यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम् A" मन्त्र से पूजन करना

वेद से यह निश्चय हुआ कि यज्ञ रूप ईश्वर है । जो यज्ञ की मूर्ति हुई वह ईश्वर की मूर्ति हुई । यज्ञ पुरुष की मूर्ति कैसी होती है इसके ऊपर विचार किया ।

ओं देवा ह वै सत्रं निषेदुः अग्निरिन्द्रः सोमो मखो विष्णुर्विश्वेदेवा अन्यत्रैवाश्विभ्याम् ॥ १ ॥ तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनमिति तस्माद्यत्र क्व च कुरुक्षेत्रस्य निगच्छति तदेव मन्यत इदं देवयजनमिति तद्धि देवानां देवयजनम् ॥ २ ॥ शतपथ ।

अर्थ—अश्विनीकुमार के बिना अग्नि इन्द्र सोम विश्वेदेवादि देवता विष्णु के संग यज्ञ करने में प्रवृत्त हुए ॥१॥ उनका देवयजन स्थान कुरुक्षेत्र था, जहां पर देवयजन स्थान निर्मित हो वही कुरुक्षेत्र स्थ कर्मभूमि कहलाता है ॥२॥

A त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

अर्थ—पुष्टि के बढ़ाने वाले, सुन्दर गंध वाले, तीन नेत्र वाले, रुद्र की हम पूजा करते हैं जैसे खरबूजा पक कर अपने आप बेल से

लिखा है यजुर्वेद माध्यन्दिनीय शाखा अ० ३७ में महावीर॥ नामक प्रजापति की मूर्ति बनाई जाती है इसका पूजन होता है "प्रादेशमात्रं प्रादेशमात्रमिति०"। (ह०) कालूराम।

छूट जाता है ऐसे ही वह महादेव हमको मृत्यु से छुड़ावे और मोक्ष से न छुड़ावे।

इसके ऊपर निरुक्त भी है वह यह है—

त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्। सुगन्धिं सुष्ठुगन्धिं पुष्टिवर्धनं पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनान्मृत्योः सकाशान्मुञ्चस्व मां कस्मादित्येषापरा भवति (निरुक्त परिशिष्ट)।

॥महावीर नामक प्रजापति की जो मूर्ति बनती है उसको शतपथ इस प्रकार लिखता है। देखिये—

मृत्पिण्डमुपादाय महावीरं करोति मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णऽइत्यसावेव बन्धुः प्रादेशमात्रं प्रादेशमात्रमिव हि शिरोमध्ये संगृहीतं मध्ये संगृहीतमिव हि शिरोऽथास्या परिष्टात् त्र्यङ्गुलं मुखमुन्नयति नासिकामेवास्मिन्नेतद्दधाति तं निष्ठितमभिमृशति। शतपथ काण्ड १४। १। १। १०

आर्यसमाज (प्रथम वार)

मूर्तिपूजा सिद्ध करने के लिये आप को सर्वतो प्रथम कोई वेद मंत्र देना था किन्तु ऐसा आपने नहीं किया। करते भी कहां से। वेद में कोई ऐसा मंत्र हो नहीं है जिससे मूर्तिपूजा सिद्ध होना सम्भव हो और आपके किसी मंत्र का प्रमाण न देने से भी यही सिद्ध हो गया कि वेद में तो मूर्तिपूजन का विधान नहीं है।

आपने जो संस्कारविधि के पंचयज्ञ का उदाहरण देते हुए ओखली मूसल का बलि देना लिखा है यह बिल्कुल मिथ्या है। वहाँ पर ऐसा पाठ कहीं नहीं है। आप पबलिक को धोखा क्यों देते हैं। उस स्थान पर अनेक भागों का रखना मात्र है, पुनः स्पष्ट लिखा है कि उन भागों को यदि कोई अतिथि आ जाय तो उसे दे दे अन्यथा अग्नि में डाल दे। आपने इस पाठ को क्यों छिपाया? आपने आर्याभिविनय से एक मन्त्र दिया है जो कि ऋग्वेद में आया है। यदि इस का आप भाष्य देख लेते तो आपको पता चल जाता, वहां पर "पाहि" का अर्थ "पालन" किया है। आप इतना परिश्रम क्यों करने लगे।

संस्कारविधि में आगत "ओं औषधे त्रायस्व" आदि मन्त्रों से उन २ चीज़ों का पूजन कहीं नहीं लिखा है किंतु कार्य करने वाले को आदेश किया है कि उनको पवित्र रक्खे। यजुर्वेद में आगत "घृतेन सीता मधुना" मन्त्र पर आक्षेप है इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है। वहां पर फल्ले में घी लगाना लिखा है न कि पूजा करना, घी इसलिये लगाते हैं कि वह फटने न पावे।

आपने "तां यज्ञो" मंत्र से मूर्तिपूजन सिद्ध करना कहा है किन्तु वहां मूर्ति का नाम भी नहीं है। इसमें तो आप बुरे फंस गये। आपको कोई ऐसा मंत्र देना था जिसमें विधि वाक्य से मूर्तिपूजन का विधान पाया जाता हो।

अब हम आपको एक ऐसा मंत्र देते हैं कि जिससे मूर्ति का सर्वथा खण्डन होता है और उस पर आपको कुछ भी ऐतराज़ होना ही नहीं चाहिये सुनिये—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजु० ४०।८

देखिये इस पर अपने ही आचार्य महीधर का भाष्य A।

A आर्यसमाजी महाशय ने महीधर भाष्य लिखने में छल

य एवमात्मानं पश्यति स ईदृशं ब्रह्म पर्यगात् परिगच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः । कीदृशम् । शुक्रं शुक्लं शुद्धं विज्ञानन्दस्वभावम् अचि-

---

किया है । समस्त नहीं लिखा और न इस मंत्र का कुछ अर्थ किया है यदि महीधर भाष्य को ही देखें तो महीधरजी भी इस मंत्र में परमात्मा के निराकार और साकार ये दो रूप मानते हैं । यहां पर निराकार रूप को दिखलाया है और इसी मंत्र के उत्तरार्द्ध में स्वयम्भू शब्द आया है उसका अर्थ स्वयमेव भवतीति स्वयम्भू किया है जिसकी भाषा यह है कि जो अपने आप शरीर को धारण करे । स्वयम्भू शब्द का अर्थ अपने आप पैदा होना महीधर ने स्पष्ट दिखला दिया है । इतना ही नहीं कि केवल महीधर ही स्वयम्भू शब्द का अर्थ अपने आप पैदा होना लिखते हों किन्तु मनुजी ने भी स्वयम्भू का अर्थ शरीर धारण करना लिखा है । देखिये —

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तोऽव्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥

मनु० १ । ६

पं० राजाराम शास्त्री (प्रोफेसर डी०ए०वी० कालेज लाहौर) इस श्लोक का भाषा इस प्रकार करते हैं —

त्वशक्ति अकायं न कायः शरीरं यस्य तत् । अकायत्वा देव अव्र-णम् अक्षतम् । अस्नाविरं न विद्यन्ते स्नावाः सिरादयः तदस्नाविरं स्नायुरहितम् । अकायत्वा देव इत्यादि ।

कहिये इस मंत्र और इसके भाष्य में परमात्मा को काय शरीर से रहित कैसे स्पष्ट शब्दों में लिखा और जब उसका शरीर ही नहीं तो "नष्टे मूले नैव शाखा न पत्रम्" के अनुसार इसकी मूर्ति होना सम्भव ही नहीं। कहिये क्या अब भी आप उसकी मूर्ति बनाना और उसकी पूजा करना वेद प्रतिपाद्य बतलाने का साहस करेंगे।

और देखिये परमात्मा को इन्द्रिय रहित उपनिषदों में कैसा स्पष्ट कहा है—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥श्वेता० ३।१७

अर्थात् उस परमात्मा के कोई इन्द्रिय नहीं है किन्तु सब इन्द्रियों का काम वह बिना इन्द्रियों ही के करता है। कहिये

तब भगवान् स्वयम्भू जिसकी (रचना) शक्ति कार्य्योन्मुख हुई है, वह इस अँधेरे को हटाता हुआ, अव्यक्त हुआ भी इस महाभूत आदि को व्यक्त करता हुआ प्रकट हुआ।

अब ऐसे परमात्मा की मूर्ति बनाना और उसे पूजना सम्भव है?

जहां तक लिखे वेदादिकों में कहीं भी मूर्तिपूजा का विधान नहीं पाया जाता, इसके विपरीत स्थल २ पर लाखों प्रमाण मूर्ति-पूजा के विरुद्ध मिलते हैं। यदि उन सब को लिखने बैठें तो बड़ा भारी पोथा केवल प्रमाणों ही का बन जाय इसलिये प्रार्थना है कि आप इन पर विचार करें और यदि आत्मिक बल हो तो स्पष्ट स्वीकार करें कि हमारा कथन ठीक है।

(ह०) ब्रजमोहन झा।

सनातनधर्म (द्वितीय बार)

मैंने वेद के दो मंत्र दिये एक "तं यज्ञ" दूसरा "त्र्यम्बकं यजामहे" इसका आपके पास कुछ उत्तर नहीं था अतः छोड़ दिये। "नायश्च" मन्त्र का ऋग्वेद भाष्य किस का बनाया देखें, फिर ऋग्वेद भाष्य क्या करेगा। निरुक्त ने इस पर "पिव" लिखा है। "पिव" का अर्थ पान है, रक्षा नहीं, इसको साफ करें छिपाते क्यों हैं।

कार्य करने वाले को नहीं कहा, छुरे से कहा है कि मैं तुझे नमस्ते

करता हूं, तू बच्चे को मत मार। आपने अपनी तरफ से बाल साफ करना लिखा है, आप के पास उत्तर नहीं अतः टालना चाहते हैं।

संस्कारविधि में ओखली मूसल साफ लिखा है, सब को एक २ बलिदान लिखा है। सब्बास का देवता कौन है आप मिथ्या भाषण करके काम न चलाइये संस्कारविधि पढ़ कर सुनाइये। 'पटेला कहे नहीं' यह आप ने अपनी तरफ से लिखा है वहां पर तो यह लिखा है कि 'पटेला (पटड़ा) सब को भी देगा' शङ्कर की शक्ति से पटेला पुष्ट होता है इसमें प्रमाण दीजिये।

आपने यह जवाब दिया कि ईश्वर निराकार है। निराकार ही नहीं निराकार और साकार दोनों हैं—

"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च"

दूसरा प्रमाण—॥"उभयमेतत् प्रजापतिः"

A द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यं च। श० १४।५।३।२

॥प्रजापतिर्वाऽएष यज्ञो भवति। उभयं वाऽएतत्प्रजापति—र्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमित ँ रूपं तदस्य तेन संस्करोति स इत्याऽथ यत्तूष्णीं कृत्स्नं प्रजापति ँ संस्करोति य एवं विद्वा-

"प्रजापतिश्चरतिगर्भे [१]" इस मन्त्र में साफ लिखा है कि अजन्मा ईश्वर गर्भ में आता है उसके स्वरूप को धीर पुरुष देखते हैं जिस ईश्वर में समस्त भुवन ठहरे हैं। "एषोह देवाः [२]" इस मन्त्र में लिखा है कि यह ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में सब से प्रथम "जातः" उत्पन्न हुआ, आगे को होगा अतः शरीरधारी

नैतद्वेदं करोत्यथो ऽस्वायै पिण्डं परिस्तिष्ठित प्रायश्चित्तिभ्यः ॥

अथर्व का० १४ प्रा० २ । १८

[१] प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

यजु० अ० ३१ मं० १९

अर्थ — अजन्मा प्रजापति ईश्वर गर्भ में आता है और अनेक रूपों से उत्पन्न होता है उसके स्वरूप को धीर पुरुष उत्तमरीत से देखते हैं जिस ईश्वर में समस्त भुवन ठहरे हैं।

[२] एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

यजु० अ० ३२ मं० ४

अर्थ — यह प्रसिद्ध परमात्मा देव सब दिशा विदिशाओं में जो व्यापक है वही सब से पहिले गर्भ में आकर उत्पन्न हुआ

पन उसका सिद्ध है इसमें स्वामी जी को भी विरोध नहीं है।

" इदं विष्णुर्विचक्रमे ०" में वामन अवतार और "वराहेण पृथिवीसंविदाना॥" में वाराह अवतार फूलों को

वहां आगे को उत्पन्न होना जो जनों के प्रति सचेतोमुख होकर ठहरा है।

० इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।

समूढमस्य पा ँ सुरे स्वाहा॥

यजु० अ० ५। १५

अर्थ—(विष्णुः) ब्रह्म (इदम्) इस जगत को (विचक्रमे) पैर से नापता भया (पदम्) पाद को (त्रेधा) तीन प्रकार से (निदधे) रक्खा।

इस मन्त्र का दूसरा कोई अर्थ हो ही नहीं सकता क्योंकि इसमें विचक्रमे क्रिया पड़ी है, विचक्रमे क्रिया पैर के धरने और उठाने ही में बनती है इस नियम में पाणिनि ने "वेः पादविहरणे" सूत्र लिखा है।

△वराहेण पृथिवीसंविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय।

अथर्व का० १२ अनु० १ मं० ४८

अर्थ—वाराह रूपधारी प्रजापति ने यह पृथिवी उद्धार की है उनको प्रणाम है।

देवेभ्यः॥" में ब्रह्मा अवतार लिखा है।

(ह०) कालूराम।

आर्यसमाज (द्वितीय बार)

"नमें यशः" का उत्तर हम दे चुके उसमें मूर्ति शब्द भी नहीं। 'वाहि' शब्द से आचार्य महीधर ने भी मानकस्यक का ग्रहण किया है। "याहि याहि" के अर्थ में आपने स्वामी दयानन्द के मन्त्र पर आक्षेप किया था उसका समाधान कर दिया गया। आपने दूरे

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।

तैत्ति० आ० प्र० १ अनु० १ मं० ३०

अर्थ—हे पृथिवी तुम को असंख्य भुजावाले कृष्ण वराह ने उद्धार किया है।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये।

यजु० अ० ३१ मं० २०

अर्थ—(यः) जो (देवेभ्यः) देवताओं के लिये (आतपति) तपता है (यः) जो (देवानाम्) देवताओं के (पुरः) पहले (हितः)

को नमस्ते करना लिखा है यह भी सरासर गलत है। उसमें नमस्ते करना कहीं नहीं लिखा। वहां लिखा है कि इस मंत्र को बोल कर छुरे को दहने हाथ में ले। मकान के देवता का आपने जिकर किया है किंतु हमने तो मकान शब्द का उच्चारण भी नहीं किया। फिर आप हमें ही झूठा बतलाते हैं। भला इस न्याय का भी कोई ठिकाना है। जो कुछ हो हम आप के गालिप्रदान को शिर पर लेते हैं। हमारे पास गालियां नहीं हैं। पटेला घी से पुष्ट होता ही है इसमें आप को क्या शंका। अब हम मन्त्रों की ओर चलते हैं। इस सम्बन्ध में आपने निराकार तो मान ही लिया अब साकार देखना है।

स्थित था और (यः) जो (देवेभ्यः) देवताओं से (पूर्वः) पूर्व (जातः) प्रकट हुआ (तस्मै) उस (रुचाय) तेजवाले (ब्राह्मये) ब्रह्मा के लिये (नमः) नमस्कार है।

हमारा अर्थ बनावटी नहीं है किन्तु हमारे अर्थ की पुष्टि में प्रमाण मिलते हैं। देखिये—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव। विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।

मुण्डकोपनिषद्।

अर्थ—विश्व का रचने वाला और भुवन की रक्षा करने वाला देवताओं से पूर्व ब्रह्मा प्रकट हुआ।

"द्वे वाव ब्रह्मणो A रूपे" इत्यादि में केवल यह बतलाया है कि इस जगत् के दो रूप हैं एक मूर्त और दूसरा अमूर्त। मूर्त से पृथ्वी जल आदिक और अमूर्त से वायु आदिक का प्रदर्शन है।

'प्रजापतिश्चरति गर्भे' इस मन्त्र को आपने आधा क्यों पढ़ा? मन्त्र यह है कि "प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानः B"। इसमें कैसी खूबसूरती से परमात्मा को बतलाया है कि वह पैदा न होते हुये भी गर्भों में व्यापक है। लिखा भी है। कि आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः।

A ब्रह्म शब्द का अर्थ जगत त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। ब्रजमोहन झा तो क्या समस्त आर्यसमाजी मिल कर भी ब्रह्म का अर्थ जगत नहीं कर सकते। जैसे "खाकूसे" का अर्थ "ऊँट" नहीं होता ऐसे ही "ब्रह्म" का अर्थ 'जगत' नहीं होता।

B स्वामी दयानन्द जी का अर्थ यह है-हे मनुष्यो! जो (अजायमानः) अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सब के हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विशेष कर प्रकट होता। (तस्य) इस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को (धीराः) ध्यानशील विद्वज्जन

आपने एक मन्त्र और "इदं विष्णुर्विचक्रमे" लिखा है इसमें विष्णु शब्द का अर्थ "वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः" और यह मन्त्र सीधा सूर्यपरक है क्योंकि वह शोभा तीन स्थलों पर अपनी किरणों को प्रकाशित करता है। महाभारत आदि में भी विष्णु से सूर्य लिया है। इससे आपने अवतार ग्रहण किया है वह विषयान्तर निग्रह स्थान है। और भी देखिये शंकर स्मृति A क्या कहती है। "रूप रूपविवर्जितस्य भवतः"। इस प्रकरण में

(परि पश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर (तस्थुः) स्थित हैं॥

A भगवान् शंकराचार्य का यह भी तो कथन है कि—

अथ ब्रह्मावतारस्य शिवस्योपासनं श्रुतौ।

प्रोक्तं तस्य निराशोनो कर्तुं केनापि शक्यते।

ब्रह्मा का अवतार और शंकर का पूजन जो वेदविहित है किसी की सामर्थ्य नहीं जो उसका खण्डन कर सके।

पुराणों में चक्रवर्ती अम्बरीष के इतिहास में लिखा है कि-

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
:करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥१३॥

भागवत।

"व्यापित्वञ्च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना। क्षन्तव्यं जगदीश तद्धि भवता दोषत्रयं मत्कृतम्" और देवी भागवत स्कंध ३ अध्याय ६ श्लो ७० में लिखा है।

दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं न भविष्यति ;

निर्गुणः परमात्मा सौ न तु दृश्यः कदाचन।

अध्याय ७ श्लो ६ में ब्रह्माजी ने कहा है—

निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद्दृष्टिगोचरम्।

दृश्यं च नश्वरं यस्मात् अरूपं दृश्यते कथम्।

इसमें कैसा स्पष्ट दिया है कि जो अरूप है वह दृश्य कैसे हो सकता है। और जो दृश्य है वह नश्वर अर्थात् नाश होने वाला है। इसलिये उसकी मूर्ति नहीं हो सकती।

और उपनिषद् भी कहते हैं "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इत्यादि देखिये ये कैसे अच्छे शब्द हैं। और देखिये कूर्म-पुराण क्या कहता है।

अपाणिपादो जवनो गृहीता हृदि संस्थितः।

अचक्षुरपि पश्यामि तथा कर्णः शृणोम्यहम्।

इसमें कैसा साफ लिखा है कि मूर्ति हो ही नहीं सकती। महाभारत में लिखा है —

तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठपाषाणमृण्मये ।

प्रतिमादौ मनो येषां ते नराः मूढचेतसाः ॥

पशु यज्ञ और प्रतिमादि पूजा को यहां स्पष्ट मूर्खों का कार्य लिखा है ।

अब हम एक स्पष्ट मंत्र यजुर्वेद का देते हैं उस पर आप यदि महीधर का भाष्य ही देख लें तब भी आप को मूर्ति-पूजा त्याज्य ही माननी पड़ेगी । देखिये—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।यजु० अ० ३२।३

महीधरभाष्य—यस्यA प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किञ्चिद्वस्तु नास्ति Bप्रसिद्धं महद्यशः यस्यास्ति इत्यादि ।

देखिये कैसा स्पष्ट इस मंत्र के भाष्य में आप के आचार्य ने

Aक्यों महाशय "तस्य" का 'यस्य' कैसे ?

B"अतएव नाम "इसे क्यों छोड़ा ? इसका स्पष्ट महीधर भाष्य पृष्ठ १२४ में देखिये ।

प्रिय पाठक ! इस मन्त्र का श्रीमहीधरभाष्य इस भांति है-

द्विपदा गायत्री । तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किञ्चिद्वस्तु नास्ति अतएव नाम प्रसिद्धं महद्यशः यस्यास्ति सर्वातिरिक्तयशा इत्यर्थः ॥ मही० भा०॥

भी परमात्मा को प्रतिमा रहितA माना है। क्या इस मन्त्र के वेदों में होते हुये भी आप मूर्ति के नाम से लोगों से धन हरण करने का साहस करते हो रहेंगे अब ऐसा कदापि सम्भव नहीं। इस मंत्र के शब्द बहुत स्पष्ट हैं एक साधारण भाषा जानने वाला भी इसके अभिप्राय को समझ सकता है।

इतना ही नहीं यदि आपने अपने महामान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत को भी ध्यान पूर्वक पढ़ा होता तो आप को स्पष्ट पता चल जाता कि मूर्तिपूजा त्याज्य ही नहीं किंतु उसका करना एक मूर्खता और पाप में शामिल होना है देखिये श्रीमद्भागवत दशम स्कंध अध्याय ८४। १३

इस मंत्र में त्रिपदा गायत्री छन्द है। उस पुरुष की प्रतिमा अर्थात् उपमा कुछ वस्तु नहीं है। इसी से नाम प्रसिद्ध है जिस का बड़ा यश है। अर्थात् वह पुरुष अनुपम होने से सब से भिन्न यश वाला है।

Aयहाँ स्वराजी महाशय ने उपमा वाचक प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति बता कर स्पष्ट छल किया है अतः इसकी विज्ञता पाठक समझ ही लेंगे।

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके,
स्वधीःकलत्रादिषु भौमइज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित्
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१॥

यह भगवान ने कहा है। इस पर अपने ही आचार्यों का संस्कृत भाष्य भी देख लीजिये "अतो यस्य वातपित्तश्लेष्म युक्ते शरीरे आत्मबुद्धिः कलत्रादिषु स्वीया इति बुद्धिः । भू विकारे प्रतिमादौ देवताबुद्धिः स दारुणो वृष खर इव ज्ञातव्यः ।

भावार्थ—जो वात पित्त युक्त शरीर को आत्मा समझता है कलत्रादि को अपना समझता है और भू विकार अर्थात् मिट्टी या पत्थर से बनी चीजों में देवता बुद्धि रखता है वह बिल्कुल मूर्ख और विद्वानों की दृष्टि में पशु के समान है। कहिये अब आप क्या पसंद करते हैं या तो इस श्लोक में जो लिखा है सो उसको पसन्द कीजिये अन्यथा मूर्तिपूजा छोड़िये। या कम से कम इस भागवत के श्लोक पर हरताल फेरिये। पबलिक यह आपका आश्चर्य करेगी कि हमारे प्यारे सनातनधर्मी पंडितगण उनका मन भी हरते हैं और उन्हें पशु भी बनाते हैं। कहिये

पं० जी अब भी क्या और मूर्तिपूजा सिद्ध करने का साहस करेंगे ? परमात्मा करें आप हमारी बात मान लें और सनातनधर्मी समुदाय को पशु बताना छोड़ दें। मुझे वास्तव में बड़ा दुःख है कि मेरे भाइयों को चौड़े में लूटा जाता है और उन्हें पशु बताया जाता है।

(ह०) ब्रजमोहन झा।

सनातनधर्म (तृतीय वार)

"न[A] तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मन्त्र से आर्यसमाज मूर्ति का खण्डन करता है किन्तु इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द का अर्थ "प्रतिमीयते अनया सा प्रतिमा" होता है अर्थ यह हुआ कि

[A] न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः

हिरण्यगर्भ इत्येषः मा मा हिंसीदित्येषा

यस्मान्न जात इत्येषः—यजु० अ० ३२ मंत्र० ३

इस मन्त्र में आधा तो मन्त्र है और शेष उत्तरार्द्ध में तीन मन्त्रों का प्रतीक है। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि उस परमात्मा की प्रतिमा अर्थात् बराबरी वाला कोई नहीं। यह जो हमारा

इसके तुल्य (समान) कोई नहीं। आगे इसमें आता है कि "यस्य नाम महद्यशः" अर्थात् जो बड़े भारी यशवाला है। यशवाला कहने से मूर्ति का खण्डन नहीं होता किन्तु मण्डन होता है।

अर्थ है यही अर्थ महीधर और उव्वट ने किया सायण और ब्रह्म-सूत्र २।३।७ के शारीरिक भाष्य में भगवान् शंकर ने भी किया है कि ईश्वर की तुलना वाला और कोई नहीं। यहां पर प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति किसी ने भी नहीं किया। फिर आर्यसमाज के मनगढ़न्त कपोलकल्पित मिथ्या अर्थ को कोई विचारशील मनुष्य किस प्रकार सत्य मान सकता है? ब्रजमोहन झा ने आधे ही मन्त्र का अर्थ किया है हम समस्त मन्त्र का अर्थ लिखते हैं। आगे के पदों का अर्थ इस प्रकार है कि वह कौन परमात्मा है मन्त्र कहता है कि जो महद्यश है। फिर वह कौन परमात्मा है? मन्त्र कहता है कि जिसका वर्णन हिरण्यगर्भ मन्त्र में आया है, फिर वह कौन परमात्मा है मन्त्र कहता है कि जिसका वर्णन "मामाहिँसीत्" मन्त्र में आया है। फिर वह कौन परमात्मा है मन्त्र कहता है कि जिसका वर्णन "यस्मान्न जातः" मन्त्र में आया है।

सब से पहिले आवश्यकता है कि इन तीन मन्त्रों में देख

संसार में यशवालों की ही मूर्ति होती है। आर्यसमाज सब से अधिक यशवाला स्वामी दयानन्द जी को मानता है अतएव

लें कि परमात्मा का वर्णन इन तीन मन्त्रों ने कैसा किया है—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

अर्थ— हिरण्य पुरुष का ब्रह्माण्ड में गर्भ रूप से जो प्रजापति स्थित है वह हिरण्यगर्भ कहलाता है वह प्रजापति सर्व प्राणि जाति की उत्पत्ति से प्रथम स्वयं ब्रह्माण्ड शरीरी हुआ और उत्पन्न होने वाले जगत् का स्वामी हुआ वह प्रजापति अन्तरिक्ष द्युलोक और भूमि को धारण किये हुये है उस प्रजापति की हम हवि से परिचर्या करते हैं।

मा मा हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

य० अ० १२ मं० १०२

(यः) जो प्रजापति (पृथिव्याः) पृथिवी का (जनिता) उत्पन्न करने वाला (यः) जो (सत्यधर्मा) सत्यधारण करने वाला (दिवम्) द्युलोक को (व्यानट्) सृजन कर व्याप्त है (च) और (यः) जो (प्रथम) आदि पुरुष प्रथम शरीर (आपश्चन्द्राः)

उनकी मूर्ति (फोटू) छपवाता है। प्रभु पंचम जार्ज के बराबर

जगत के अंकुर और तृप्ति साधक जलको (जजान) उत्पन्न करता हुआ वा मनुष्यों का रचने वाला है वह प्रजापति (मा) मुझे (मा हिंसीत्) मत मारे (कस्मै) उस प्रजापति के निमित्त (हविषा विधेम) हवि देते हैं।

यस्मान्न जात: परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापति:प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥
य० अ० ८ मं० ३६

(यस्मात्) जिस पुरुष से (अन्य:) दूसरा कोई उत्कृष्ट (न) नहीं (जात:) प्रादुर्भूत हुआ (अस्ति) है (य:) जो (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकों में आविवेश) अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट है (स:) वह (षोडशी) षोडशकलात्मक सब भूतों का आश्रय (प्रजापति:) जगत का स्वामी (प्रजया प्रजा रूप से (संरराण:) सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापालन के निमित्त (त्रीणि) अग्नि वायु सूर्य लक्षण वाली तीन ज्योतींषि) ज्योतियों को अपने तेज से (सचते) उज्जीवन करता है।

ऊपर के तीनों मन्त्रों में ईश्वर का शरीर धारण करना और जगत का स्वामी होना लिखा है इसी से कहा गया है कि उसपर

कोई यशवाला नहीं अतएव आपका मूर्ति गिलास, रुपया दोअन्नी एकअन्नी, टिकट, आदि पर बनती है। इसमें हिरण्यगर्भ मन्त्र की प्रतीक है।

हिरण्यगर्भ मन्त्र का अर्थ यह है कि हिरण्यगर्भ ईश्वर सब से प्रथम उत्पन्न हुआ था और इसी मन्त्र से यज्ञ में प्रजापति ईश्वर की मूर्ति बनाई जाती है। कल्पसूत्र लिखता है कि "अथ ▲पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः स यजमानः इत्यादि"। "अथ सामगायति" यह शतपथ कहता है कि जब पुष्कलपत्र में ईश्वर

मात्मा की प्रतिमा तुल्य (उपमा) कोई नहीं। "हिरण्यगर्भ" मन्त्र से प्रजापति की मूर्ति बनती है इस में कल्पसूत्र और शतपथ ब्राह्मण के बड़े लम्बे लेख चले हैं वे आगे दिये जावेंगे।

▲अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोऽग्निः स यजमानः
स हिरण्मयो भवति, ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृतꣳ
हिरण्यममृतमग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः

श० ७। ४। १। १५

उत्तानमप्रोक्ष्यꣳ हिरण्यपुरुषं लक्षिमन् हिरण्यगर्भ इति कात्यायन कल्पसू० १७। ४। ३

अथ सामगायति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृश-

की मूर्ति बनाई तब देवता स्तुति करने लगे। स्तुति के बाद देखा कि इसमें चेतनता नहीं आई, फिर साम गाया, ईश्वर प्रकट चेतन हुआ इस कारण 'न तस्य' मन्त्र में मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं किन्तु मण्डन है। आर्यसमाज के पास इसका क्या जवाब है ?

छुरे को आप डालते हैं संस्कारविधि में लिखा है कि 'शिरो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते'। फिर आगे लिखा है—

मा मा हिंसीः

जिसका अर्थ यह है कि इसको मत मार। 'ओं तत्पुरुषाय नमः' यह मंत्र पढ़ कर जो भोग लगाया जाता है इस मन्त्र में कहा

तेनापश्यद्यदेतच्छुक्रं ज्योतिः ॥ २२ ॥ ते अब्रुवन् उपजा-नीत यथास्मिन् पुरुषे वीर्यं दधामेति ते अब्रुवंश्चेतयध्वमिति चितिमिच्छतेति वाव तदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति ॥ २३ ॥ ते चेतयमाना एतत् सामापश्यंस्तदगायंस्त-दस्मिन्वीर्यमदधुस्तथैवास्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति वीर्यं दधाति त्रिर्गायति त्रिवृद्धि ... पुरुषाय न ... ॥ २४ ॥ अथ सर्पना-मैरुपतिष्ठत इमे वै लोकाः सर्पाः।

शा० ७।४।१।२२-२३-२४

मकान का देखना कौन है ?

हमने कौन गाली दी ? पढ़ कर सुनाइये ।

हे वाव ब्रह्मणो रूपे

यहां पर ब्रह्म शब्द से आपने जगत ले लिया। ब्रह्म से ईश्वर का ग्रहण होता है सब जानते हैं ।

उभयं वा एतत्प्रजापतिः

इसका आप उत्तर नहीं देते । वाराह अवतार को आपने साफ उड़ा दिया मानो हमने कहा ही नहीं ।

हम निग्रह स्थान में आये या आप ? आपने प्रथम कहा कि ईश्वर निराकार है उसका उत्तर साकार होना हमने कहा । ब्रह्मा अवतार का जवाब गायब ।

'अशब्द' आदि जो आपने प्रमाण दिये जिन उपनिषदों में इन श्रुतियों से निराकार लिखा उनमें दूसरी श्रुतियों में साकार भी लिखा है हमने 'अपाणि पादो' के आगे की श्रुति 'एषो ह देवः' पहले ही लिख दी आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । "प्रजापतिश्चरति" मन्त्र का साफ अर्थ स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि अजन्मा ईश्वर गर्भ में आता है और बहुत रूप से प्रकट होता है उसके स्वरूप को धीर देखते हैं जिसमें संसार ठहरा है

उसी ईश्वर के रूप को "तं यज्ञं" मन्त्र के अर्थ से साफ निकलता है कि सृष्टि के आरम्भ में देवताओं ने ईश्वर का पूजन किया। "यजामहे" का कोई जवाब नहीं। "इदं विष्णुः" मन्त्र का सीधा सीधा अर्थ है कि विष्णु ने इस संसार को नापा, तीन कदम रक्खे। 'विचक्रमे क्रिया' पैर के उठाने धरने से ही बनती है फिर आप सूर्य किरणों किस व्याकरण से अर्थ करते हैं। पुराण अब के लिखूंगा।

(ह०) कालूराम।

आर्यसमाज (तृतीय वार)

आपने "न तस्य प्रतिमा अस्ति" का अर्थ जो दिया है उसके सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि आप इस पर महीधर भाष्य को देख लें। उसमें 'प्रतिमा प्रतिमानं उपमानम् किंचिद्वस्तु—नास्ति' लिखा है आपने "एषो ह देवाः" इत्यादि मन्त्र दिया है इस पर भी यदि आप महीधर का भाष्य देख लें तो शंका मिट जाय उनका भाष्य है "गर्भे अन्तः गर्भ मध्ये सउ स एव तिष्ठति। वह गर्भ में व्यापक है। यज्ञ वालों की मूर्ति होती है किंतु उसका

पूजन कोई नहीं करता। आपने जार्जपञ्चम और ऋषि दयानन्द को मूर्ति होना बतलाया है किन्तु आपको यह भी बतलाना था कि उनकी पूजा भी की जाती है। क्या उन पर चन्दन अक्षत चढ़ाये जाते हैं और उनसे प्रार्थनाएं की जाती हैं। यह उदाहरण आपके सर्वथा प्रतिकूल है। हिरण्यगर्भ से भी मूर्ति बनाना कहीं नहीं सिद्ध होता। आपने जो संस्कारविधि का मंत्र पढ़ा है यह स्वामीजी ने छुरे के लिये नहीं लिखा है किन्तु यह वेद मन्त्र है। "प्रजापतिश्चरति" का उत्तर हम दे चुके हैं। आपने जिस मन्त्र में वराह अवतार का जिकर किया है तो उसका पहले तो प्राकृत विषय से कोई सम्बन्ध नहीं इतने पर भी इससे अवतार सिद्ध नहीं हुआ। यदि आपने निरुक्त देखा होता तो पता लग जाता। "वराह् आहारो भवति" इत्यादि अनेक अर्थ वहां लिखे हैं। उनमें किसी से अवतार सिद्ध नहीं होता।

जिन उपनिषदों से हमने निराकार सिद्ध किया है उनमें आप साकार भी मानते हैं। यह तो श्रुति विरोध हो गया और न आपने उन श्रुतियों को लिखा। इस स्थान पर भी आप निगृहीत हुए। विष्णु का अर्थ हम व्यापक सूर्य बतला चुके हैं।

श्वेताश्वतर में भी लिखा है:—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते

न तत् समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते ।६।८

ऐसी दशा में उसकी मूर्ति बनाना और पूजना कहां सम्भव है ?

आपके मान्य महाभारत में भी लिखा है—

मृच्छिलाधातुदार्वादि मूर्त्तावीश्वरबुद्धयः ।

क्लिश्यंति तपसा मूढाः परां शांतिं न यांति ते ॥

अर्थात् मिट्टी पत्थर और लकड़ी आदि की मूर्ति में जो ईश्वर बुद्धि करते हैं वे मूर्ख वृथा क्लेश को प्राप्त होते हैं। इस परिश्रम करके वे पराशांति को प्राप्त नहीं होते।

इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि जिन मूर्तियों को आप पूज रहे हैं वे सनातन से कैसे सिद्ध हो सकती हैं। हनुमान जी और भगवान् रामचन्द्र की मूर्तियां कहां से आईं और किस समय से उनकी पूजा आरम्भ हुई। यदि बीच में आरम्भ हुई तो सनातन कैसे हो सकती है।

इसके अतिरिक्त आप को यह भी बतलाना होगा कि वेदों में कितनी बड़ी और लम्बी चौड़ी मूर्ति बनाना लिखा है। और

मन्दिर आदि की स्थापना और धूप नैवेद्य चढ़ाना कौन से मन्त्रों से सिद्ध है।

फिर आपको यह भी बतलाना चाहिये कि आप व्याप्य की पूजा करते हैं या व्यापक की। यदि व्यापक की तो वह सर्वत्र विद्यमान है उसकी मूर्ति हो ही नहीं सकती। यदि आप व्याप्य की पूजा करना चाहते हैं तो वह जड़ है। उससे ईश्वर की पूजा नहीं हो सकती।

(ह०) व्रजमोहन झा।

सनातनधर्म (चतुर्थ वार)

आर्यसमाज "अन्धं तमः प्रविशन्ति" मन्त्र से मूर्तिपूजन का खण्डन करता है उसका अर्थ यह है कि जो कार्य कारण की उपासना करता है वह नरक को जाता है। हम कार्य पृथ्वी के पूजक नहीं किंतु उसमें व्यापक ब्रह्म को पूजते हैं। फिर यही पर सम्भूति करके शरीर लिया है जो शरीर को ईश्वर मानता है वह नरक को जाता है यही इसका अर्थ समस्त भाष्यकारों ने किया है।

आगे मन्त्र कहता है कि "संभूति च विनाशञ्च" इस मन्त्र का अर्थ है कि शरीर से मृत्यु को पार कर सम्भूति ईश्वर की प्राप्ति से मोक्ष को जाता है। स्वामीजी का अर्थ गलत है और इस अर्थ के रहते भी हम कंकर पत्थर पूजक नहीं किन्तु व्यापक ईश्वर के पूजक हैं।

"अर्चन्ति" इस ऋग्वेद के मन्त्र में पूजा करना लिखा है। और 'एह्यश्मानमातिष्ठ अश्मा भवतु ते तनुः' इस अथर्ववेद के मन्त्र में ईश्वर का आवाहन लिखा है।

"यदा देवायतनानि A" इस मन्त्र में प्रतिमाओं का रोना, हँसना आंख खोलना, बंद करना लिखा है। यह उस समय के लिये लिखा है कि जब संसार पर कोई आपत्ति आने को होता है। यदि प्रतिमा नहीं तो कौन हँसता है।

A यदा देवायतनानि कम्पंते देवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति तदा प्रायश्चित्तं भवतीदं विष्णुर्विचक्रमे इति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चभिराहुतिभिरभिजुहोति, विष्णवे स्वाहा, सर्वभूताधिपतये स्वाहा, चक्रपाणये स्वाहेश्वराय स्वाहा सर्वपाप शमनायेति व्याहृतिभिर्हुत्वा सामगायेत (षड्विंशति ब्राह्मण)।

"नमस्तेस्तु विद्युते" इस अथर्व के मन्त्र में 'नमस्तेस्तु अश्मने' पत्थर को नमस्कार करना लिखा है क्या यह मूर्तिपूजन नहीं ? आप भी तो संध्या के समय नित्यप्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं सच तो बतलाइये कि ईश्वर को मूर्ति कितनी बड़ी बनाते हैं ।

आप निराकार शब्द वेद को अजमेर में छाप कर साकार बनाते हैं । ओंकार की मूर्ति मस्तक पर लगाते हैं । "न तस्य" मन्त्र से प्रजापति की मूर्ति बनना हमने वेद, शतपथ, कल्प के प्रमाणों से लिखा, आप उत्तर न देकर लिखते हैं कि कहां लिखा है । महीधर के भाष्य में हिरण्यगर्भ की प्रतीक देख लीजिये हिरण्यगर्भ मन्त्र पर मूर्ति बनाना लिख दिया है ।

वाराह अवतार में "सूकराय" पद है इसको आप लौट नहीं सकते । निराकार साकार में श्रुति विरोध नहीं, श्रुति निराकार और साकार दोनों बतलाती है । इसको 'उभयं वा एतत्प्रजापतिः' इस श्रुति में साफ कर दिया जिसका आप जिकर ही नहीं करते । आपने "इदं विष्णुः" पर सूर्य को व्यापक बतलाया । सूर्य व्यापक होता तो रात्रि क्यों होती "विचक्रमे" को दबा गये ।

हम मूर्ति में व्यापक ईश्वर को मानते हैं पीछे लिख दिया है

"यस्यात्मबुद्धिः" इस श्लोक में उसको गधा बैल बतलाया जो ईश्वर के स्थान में शरीर को पूज्य मानता है। जो लड़का आदि को स्वकीया बुद्धि से मानता है और जो कार्य को ईश्वर मानता है सनातनधर्मी ऐसा नहीं करते। पुराणों को लेकर ही आर्य-समाज ने मूर्तिपूजन छोड़ा है, अब तो पुराणों को स्वतः प्रमाण मानने लग गये पुराणों में हजारों स्थान में मूर्तिपूजन है "अत्याप्नु गुरुर्थांकित मन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति" अम्बरीष का पूजन करना और ध्रुव का वृन्दावन में मूर्तिपूजा करना लिखा है। प्रभु पञ्चम जार्ज आदि की मूर्तियों का सत्कार किया जाता है। ठीक है।

स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के एक अंश में सृष्टि मानी और तीन अंश खाली माने। अंश साकार में ही होते हैं। भगवान रामकृष्ण के अवतार वेद में लिखे हैं "भद्रो भद्रया" और "कृष्णान्तु" इत्यादि और मूर्ति प्रादेश (एक बिलस्त) की का प्रमाण "प्रादेशमात्र" यह शतपथ काण्ड १४ है। (६०) कालूराम।

आर्यसमाज (चतुर्थ वार)

आप ने "अन्धन्तमः" मंत्र का विषय व्यर्थ ही उठाया है। यद्यपि

इसमें मा मूर्ति का कोई जिकर नहीं। आप जिन मंत्रों को हम देते हैं उनका तो जिकर नहीं करते और जिनको नहीं लिखते उन्हीं व्यर्थ का उठाते हैं। आपने लिखा है कि हम कंकर पत्थर पूजक नहीं हैं किन्तु व्यापक ईश्वर के पूजक हैं इसे पढ़ कर सब को बड़ी प्रसन्नता होगी। आगे से आप पत्थरादिकों पर चन्दन आदि न चढ़ाया करें। और अपने को मूर्तिपूजक न कहा करें

अर्चन्त शब्द से आपने मूर्तिपूजा कैसे मान ली उसका अर्थ तो केवल पूजा होता है।

हम लोग जो मानसिक पूजा करते हैं वह तो ठीक ही है ऐसा ही आप भी किया करें।

आप "उभयं वा एतत्प्रजापतिः" से दो अवस्था परमात्मा की लेते हैं किन्तु वहां जगत का वर्णन है जिसे कि हम पहिले बता चुके हैं यदि ऐसा नहीं तो आप को दो ईश्वर मानने होंगे एक साकार एक निराकार। सूर्य अपनी किरणों द्वारा तीनों लोकों का प्रकाश देता है। यह अर्थ तो बहुत ही ठीक है। आप जो कहते हैं कि पुराणों में मूर्तिपूजा जो है वही 'वदतो व्याघात' दोष है। इसका आप को निवारण करना होगा। पंचम जाऊं पर आप ने चन्दन चढ़ाना और भोग लगाना कहीं नहीं बतल-

'भद्रो भद्रया' आदि शब्दों से पहले तो सीताराम आदि का ग्रहण आपको किसी कोष से बतलाना चाहिये फिर यह मानना होगा कि आप के वेद राम से पीछे बने, आप ने जो षड्विंश के पाठ से प्रतिमा का नाचना कूदना बतलाया है वह ग्रन्थ ही अवैदिकAहै और हमें अमान्य है। पुराण स्वतः प्रमाण आप को तो है ही हमें नहीं। "अश्मानम्" इत्यादि से गोदान के समय बालक को दृढ़ता का उपदेश है।

अब हम आपको भगवान कृष्ण के कथन का भी स्मरण कराना चाहते हैं।उससे आपको यथार्थ स्थिति का पता लग जायगा। देखिये—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥

इसमें साफ लिखा है कि अविवेकी अर्थात् निर्बुद्धि पुरुष

A यहाँ समाजी ने सभा में बिलकुल झूंठ कहा है। सामवेद के ८ ब्राह्मण हैं। षड्विंश आर्ष दैवत छंदो मंत्र सामविधान छांदोग्यवंश नामक और 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनाम धेयम्'। इससे वह वेद है।आर्यसमाज अपने को वैदिक कहते हुये वेद ग्रन्थ को अवैदिक कहता है अतः उसे प्रायश्चित्त करना चाहिये।

मेरो व्यक्ति की सत्ता मानते हैं।

अब हम ही आप को बतलाते हैं कि असल में मूर्ति किसे कहते हैं। मनु महाराज ने लिखा है:—

आचार्य्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः॥
दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम्।
अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः॥

इन श्लोकों में भगवान मनु बतलाते हैं कि आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है। पिता प्रजापति की। इत्यादि मन्त्रों में मूर्तियों का ठीक वर्णन है। यदि आप मूर्तिपूजा करना चाहें तो इस प्रकार की मूर्तियों का क्रिया करें।

मुझे यह देख कर आश्चर्य होता है कि आप इतने स्पष्ट प्रमाणों को भी मानना नहीं चाहते। अच्छा आप न मानें यह बात दूसरी है किन्तु यह तो मुझे पूरा विश्वास है कि आज की पबलिक् को तो यह अवश्य पता लग जायगा कि आप अपने स्वार्थवश धोखा दे रहे ।

देखिये मैं आप ही के महामान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत का एक और ऐसा प्रबल प्रमाण देता हूं कि जिस पर किसी भी

बुद्धिधारी व्यक्ति को आपत्ति हो ही नहीं सकती।

देखिये भागवत तृतीय स्कंध अ० २६ श्लोक २१। २२

अहं सर्वेषु भूतेषु संतमात्मानमीश्वरम्।

हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः ॥२२॥

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा॥

तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चा विडंबनम् ॥२१॥

देखिये इन पर अपने ही आचार्य का भाष्य—

सर्वभूतेषु सदा स्थितमीश्वरं माम् हित्वा यः प्रतिमा भजते स मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति।

अर्थात् सब प्राणियों में स्थित परमात्मा को छोड़ कर जो प्रतिमा पूजन करता है वह मूर्ख या मूढ़ राख में घी डालता है या भस्म में हवन करता है।

कहिये क्या अब भी आप मूर्तिपूजा का प्रतिपादन करेंगे। यह मूर्ख और मूढ़ शब्द आप के मूल श्लोक और संस्कृत टीका दोनों ही में है मेरा अपना इसमें कोई शब्द नहीं है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में तो साफ ही लिखा है।

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।

श्वे० ३। १६

अर्थात् वही महान् परमात्मा जानने योग्य है जिसके कि हाथ पैर कुछ नहीं हैं किन्तु सब करता है। वह बिना आंख और कान के देखता और सुनता है।

इससे बढ़ कर और क्या प्रमाण आप को चाहिये और यदि आप इसे पर भी न मानें तो पबलिक तो जान ही लेगी। हमारी समझ में तो मान अपमान और हार जीत का ख्याल न करके यदि आप मूर्तिपूजा त्याज्य मान लें तो कोई हानि नहीं। सत्य मानने से प्रतिष्ठा घटती नहीं किन्तु बढ़ती है। विद्वानों को हठ नहीं चाहिये।

अन्त में हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि आप ने इस बार उन मंत्रों को पेश नहीं किया जिनको कि सनातनधर्मी भाई पहले पेश किया करते थे इसका अभिप्राय यही है कि उनका काफी समाधान हो चुका है। आशा करते हैं कि जो एक दो मंत्र बड़ी कठिनाई से आपने पेश किये उनका भी जब आप विचार करेंगे तो समझेंगे कि हमारा किया हुआ अर्थ ही यथार्थ है।

हमने जो मूर्तिपूजा के विरुद्ध अनेक प्रमाण वेद, स्मृति और पुराणादि के दिये उन पर आप ने कुछ भी नहीं लिखा। भागवतादि के श्लोकों का जिनमें मूर्तिपूजा का स्पष्ट निषेध है और मूर्तिपूजकों को खर आदि लिखा है उनका आपने कुछ भी अर्थ नहीं किया। इन सब बातों से आज सिद्ध हो गया कि मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध ही नहीं किन्तु पुराणों के भी विरुद्ध है। और यदि आप अपने पुराणों ही का ठीक अर्थ करके सनातनधर्मियों को समझावें तो हमारा अभीष्ट सिद्ध होने में कोई कमी न रह जाय।

(ह०) ब्रजमोहन झा।



श्रीहरिः

शास्त्रार्थ-फल-दर्शन

शास्त्रार्थ का फल दिखाने से पहले हम पाठकों को इतना और समझाये देते हैं कि वेद में ईश्वर साकार और निराकार दो प्रकार का बतलाया है। हमने केवल साकार प्रतिपादक मंत्रों को ही आर्यसमाज के आगे रक्खा था। कारण इसका यह था कि आर्यसमाज निराकार को तो मानता ही है। विवाद केवल साकार पर है। यदि हम वेद से साकार सिद्ध करदें तो सम्भव है कि आर्यसमाज हमारे कथन पर कुछ ध्यान देकर विचार करे। किन्तु आर्यसमाज ने ऐसा न किया हमने जहां २ पर साकार प्रतिपादक मंत्र समाज के आगे रक्खे वहाँ २ पर आर्यसमाज ने हमारे मंत्रों का कुछ तोषदायक उत्तर न देकर निराकार सिद्ध करने वाले मंत्रों को आगे रख दिया। नहीं मालूम आर्यसमाज ने ऐसा क्यों किया जहाँ तक हमने विचारा है वहां तक हम इस विचार पर पहुंचे हैं कि आर्यसमाज के पास साकार प्रतिपादक मंत्रों का कोई उत्तर नहीं है।

इससे भिन्न मूर्तिपूजा पर जहां हमने कोई प्रमाण दिया तो आर्यसमाज ने या तो यों कह दिया कि झूट है, गलत है, मिथ्या

है या यह कह दिया कि हम इस पुस्तक को ही नहीं मानते । अथवा उस मन्त्र के भाष्य का कोई ज़रा सा टुकड़ा लेकर यह बतलाया कि कैसी खूबसूरती से ईश्वर को व्यापक बतलाया है। आर्यसमाज ने इन बनावटी बातों से ही काम चलाया है जिन्हें पाठक आगे देखेंगे ।

आर्यसमाज ने इस शास्त्रार्थ में प्रायः टुकड़ों से ही काम चलाया है पूर्ण मन्त्र किसी स्थान में भी ग्रहण नहीं किया । जहां कहं पूर्ण लिया है वहां निराकार प्रतिपादक लिया है । साकार प्रतिपादक एक भी मंत्र समस्त नहीं उठाया । वहां तो केवल टुकड़ों से ही काम चलाया है ।

आर्यसमाज ने हमारे दिये हुए मंत्रों के जो अर्थ किये हैं वे सब आर्यसमाज की अनभिज्ञता सिद्ध करते हैं ।और वे अर्थ ऐसे हो गये जिन से पब्लिक को वेद में अश्रद्धा होती है । यह शोक का स्थान है ।आर्यसमाज ने अर्थ करते समय स्वामी दयानन्दजी के अर्थों का भी ध्यान नहीं रक्खा । जिससे स्वामी दयानन्द के अर्थ झूठे और ब्रजमोहन झा के किये अर्थ की सत्यता प्रतीत होती है। उत्तर देने में स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त रसातल को पहुंचा दिये गये हैं। हमको

बड़ा शोक है कि आर्यसमाज वैसे तो स्वामी दयानन्दजी को महर्षि, देशोद्धारक, आदि शब्दों से स्मरण करता है किन्तु धर्म के निर्णय में यदि काम आ पड़े तो फिर उनके लेख को मिथ्या और हिन्दी लिखे पढ़े मनुष्यों की बात को सत्य मानता है। जैसा कि इस शास्त्रार्थ में किया है। आर्यसमाज की यह दशा देखकर हमको कहना पड़ता है कि स्वामीजी के साथ में भी "हाथी के दांत खाने के और और दिखाने के और" का व्यवहार निन्दनीय है। हमारा तो यही दावा था कि स्वामी दयानन्द जी का मत मिथ्या और मानने के लायक नहीं। यही बात ब्रजमोहन झा वेद मन्त्रों के नये अर्थ बना कर दिखला रहे हैं कि इस मन्त्र का यह अर्थ ठीक है जब ब्रजमोहन झा का अर्थ ठीक और स्वामी दयानन्द का अर्थ गलत यह बात स्वीकार है तब हमारे इष्ट की तो सिद्धि होगई। रह गई यह बात कि ब्रजमोहन झा का अर्थ शुद्ध है या अशुद्ध। इस पर जिस समय ब्रजमोहन झा वेदों पर भाष्य करके नया मत खड़ा करेंगे उस समय विचार कर लिया जावेगा। जो समाज अपने सम्प्रदाय के प्रवर्तक के लेख का अनादर करता है, जो अपने नेता के लेख को भी मिथ्या कह सकता है वह यदि दूसरों का अनादर करे और उनके लेख

को मिथ्या बतलावे तो इसमें कौनसी आश्चर्य की बात है ?

प्रथम पत्र में हमारी ओर से पं० कालूरामजी शास्त्री ने अपने पक्ष की स्थापना करते हुए यह दिखलाया कि 'ओं सानुगायेन्द्राय नमः' इत्यादि १७ मन्त्रों से स्वामी दयानन्दजी के द्वारा लिखा हुआ आर्यसमाज को नित्य प्रति १७ देवताओं को भोग लगाना लिखा है जो आर्यसमाज नित्य प्रति एक एक ग्रास से १७ देवताओं को भोग लगाना है वह मूर्ति का खण्डन कैसे कर सकता है ?

इसके ऊपर ब्रजमोहन झा ने कहा कि कोई वेद मन्त्र प्रमाण में दिया होता। स्वामी दयानन्दजी ने भोग लगाने के १७ मन्त्र लिखे हैं वे ब्रजमोहन झा को "वेद न दीख कर लवेद" दीखते हैं। जाने दो वेद को। जिन मन्त्रों को मान्य समझ कर स्वामी दयानन्दजी ने भोग लगवाया उनके ऊपर आर्यसमाज को उजर कैसा ? वेद न सही लवेद सही, किन्तु स्वामी दयानन्द जी की तो आज्ञा है। स्वामीजी यदि साधारण मनुष्य होते तो आर्यसमाज यह कह सकता था कि वे भूलगये होंगे। किंतु स्वामी जी तो महर्षि थे उनकी बुद्धि "ऋतम्भरा" बुद्धि थी फिर उजर कैसा ? महर्षि के लेख के मानने में बहाना बनाना यह महर्षि का प्रथम अपमान है।

इसका उत्तर देते हुए ब्रजमोहन झा लिखते हैं कि ओखली मूसल का भोग लगाना जो आप कहते हैं यह बिलकुल मिथ्या है। और आप पबलिक को धोखा देते हैं। इसके ऊपर हम इतना ही कहते हैं कि यदि लिखी पढ़ी पबलिक संस्कार विधि को उठा कर देख ले तो मालूम हो जाय कि कौन मिथ्यावादी है। किसको जबरदस्ती से मिथ्यावादी और धोखा देने वाला बनाना क्या पाप नहीं है? स्वामी दयानन्दजी ने नौकरों सहित इन्द्र को, नौकरों सहित यमराज को, नौकरों सहित वरुण को, नौकरों सहित चन्द्रमा को, वायु को, जल को, ओखली मूसलको, लक्ष्मी को, भद्रकाली को, ब्रह्मपति को, मकान के देवता को, विश्वेदेव को, दिन में चलने वाले भूतों को, तथा रात में भी विचरने वाले भूतों को, सर्वात्मा को, और पितरों को, जो एक एक ग्रास का भोग लगाया है जब तक सूर्य चन्द्रमा हैं किसी भी आर्यसमाजी की शक्ति नहीं है कि जो इस भोग को मिथ्या सिद्ध कर दे।

स्वामी जी के लिखे भोग लगाने के समस्त मन्त्र हमारी ओर से सनातन धर्म के प्रथम पत्र (पृष्ठ १३७, १३८) में लकीर के नीचे लिखे गये हैं। और पाठकों से अनुरोध है कि वे एक बार इनको अवश्य पढ़ लें।

फिर प्रत्येक मन्त्र के साथ में "नमः" शब्द पड़ा है "नमः" शब्द के तीन ही अर्थ होते हैं—(१) अन्न देना, (२) वज्र मारना और (३) प्रणाम करना। इन तीन अर्थों में से यहां पर अन्न देना अर्थ है क्योंकि "नमः" बोलकर अन्न का ग्रास रक्खा जाता है। इसको व्रजमोहन झा छिपाते हैं, अपने मन में समझते हैं कि यदि हमने इसे मान लिया तो फिर आर्यसमाज ओखली मूसल का पुजारी हो जावेगा।

हम आर्यसमाज रेलबाजार से पूछते हैं कि आप जो तीन वर्ष से श्रीब्रह्मावर्त सनातनधर्म महामण्डल के उत्सव पर उपद्रव मचा कर शास्त्रार्थ के लिये समय मांगा करते थे तो क्या इसी साहस के ऊपर, कि दूसरों को जबरदस्ती से मिथ्या-वादी और धोखेबाज कह कर हम विजय हासिल कर लेंगे। क्या कोई भी आर्यसमाजी भूमण्डल में ऐसा है कि जो स्वामीजी के लगाये १७ भोगों को मिथ्या सिद्ध करदे?

यदि इतने पर भी हम मिथ्यावादी और धोखेबाज हैं तब तो आपके न्याय का कुछ ठिकाना ही नहीं। व्रजमोहन झा ने चाहा था कि सनातनधर्म सभा कानपुर को मिथ्या बोलने वाली और धोखा देने वाली सिद्ध कर दें तो हमारा काम हो जाय।

किन्तु ब्रजमोहन झा को उनकी लेखनी ने साथ नहीं दिया, लेखनी उलटा लिखगई। आप लिखते हैं कि वहां पर भागों का रखना लिखा है, वे भाग यदि कोई अतिथि आजावे उसको दे दे नहीं तो अग्नि में डाल दे। क्या मजे की बात है कि पहिले तो सनातनधर्म को झूठा करार दें और फिर उन्हीं भागों के रखने को स्वीकार कर सनातनधर्म के कथन को सत्य सिद्ध करें।

कहिये पाठकवर्ग! भागों का रखना जो लिखा है क्या इसमें कुछ अब भी सन्देह है? ब्रजमोहन झा ने लिखा कि वह अन्न किसी अतिथि को दे दिया जाता है या अग्नि में छोड़ दिया जाता है। इसके ऊपर हमको इतना कहना है कि हमारी ओर से यह कब कहा गया कि वह अन्न ओखली मूसल गट्ट गट्ट खाजाते हैं, इस लिखने से क्या सिद्ध हुआ, क्या भोग लगाना मिट गया? अन्न को चाहे कुछ भी करो किन्तु भोग अवश्य लगाया जाता है। अन्न का अग्नि में डालना या अतिथि को देना भोग का खण्डन नहीं करता किन्तु भोग का साक्षी बनता है जो अन्न अग्नि में डाला गया या अतिथि को दिया गया वह कौन अन्न है इस सन्देह से यदि कोई पुरुष संस्कारविधि को देख

के तो पता लग जायगा कि यह वही अन्न है जिसका कि १७ देव-ताओं को भोग लगाया गया है।

आर्यसमाज से हमारा प्रश्न है कि नौकर सहित इन्द्र को एक ग्रास का भोग लगा है वह इन्द्र कौन है और उसके नौकर कितने हैं तथा उन नौकरों के क्या क्या नाम हैं? इसके बाद जो नौकरों सहित यम, वरुण और चन्द्रमा को भोग लगाया जाता है वे सब कौन हैं और किनके कितने नौकर साथ में हैं एवं चन्द्रमा के नाम का लगाया भोग चन्द्रमण्डल में कैसे पहुंचेगा?

ओखली, मूसल को जो आर्यसमाज भोग लगाता है तो क्या ये दोनों मनुष्यों के तरह खाते हैं और आर्यसमाज के भाग से ये दोनों क्या मोटे ताजे हो जाते हैं? फिर ये खाकर क्या देते हैं इनके पुजारियों को पूजा से लाभ क्या है। फिर आर्यसमाज ओखली मूसल को ही क्यों पूजता है, जूते की पूजा क्यों नहीं करता? गर्ज़ यह है कि जितने प्रश्न मूर्तिपूजा पर वे हमसे करते हैं उतने ही प्रश्न हम इन ओखली मूसल के पुजारियों से कर सकते हैं॥

इसके आगे लक्ष्मी को भोग लगाया है। यह लक्ष्मी कौन है?

कलदार रुपया या गिलट की दुअन्नी, धर्मपत्नी का जेवर या घड़ी की जंजीर। यह कौन है, इसका भी तो पता देना चाहिये। फिर भद्रकाली आ मरी और आर्यसमाज का एक ग्रास खाकर भाग गई। नहीं मालूम कि यह कहाँ गई, गुरुकुल कांगड़ी में गई या विधवा आश्रम अजमेर में गई। हमारा कलर्क कहता है कि प्रत्येक आर्यसमाजों में एक एक ग्रास खा कर इतना भोजन यह कैसे हजम करती होगी, और बदहज़मी में इसको कौन से डाक्टर का इलाज पसन्द है। इन सब के उत्तर आर्यसमाज को देने पड़ेंगे, यह शास्त्रार्थ है मसखरी नहीं है।

फिर मकान का देवता आ गया। एक ग्रास उसको भी दिया जाता है। यह देवता किसके मकान का रखवाला है, मन्त्री जी के या प्रधान जी के? सम्भव है कि संसार के समस्त आर्य-समाजियों के मकान का मालिक यह अकेला ही हो। अजी साहब यह तो आर्यसमाज के मन्दिरों का भी मालिक है, जिस आर्यसमाज को चाहे रहने दे और जिसे चाहे उसे निकाल दे। लाहौर की आर्यसमाज ने इसका भोग लगाना छोड़ दिया था आखिर इस जबरजंग ने लाहौर के समाज मन्दिर में ताला ही लगवा दिया

इन देवताओं का भोग लगाना साफ २ लिखा है। इसमें न तो झूंठ बोला गया है और न धोखा दिया गया है किन्तु ये दोनों काम आर्यसमाज कानपुर ने अवश्य किये हैं। जब आर्यसमाज स्वामी दयानन्दजी के लेख को छिपाता है और भोग लगाने से इनकार करता है तब कहिए मिथ्यावादी आर्यसमाज है कि हम ? धोखा देने वाला कौन रहा ? वास्तव में जो दूसरों के लिए गढ़ा खोदता है उसके लिये कुआं तैयार है।

हमारा तो यही प्रश्न है कि जब आर्यसमाज ओखली - मूसल तक को भोग लगाता है तो फिर वह मूर्तिपूजन का खण्डन कैसे करता है इसके ऊपर हम पूरा २ जवाब लेंगे। तुम झूंठ बोलते हो, धोखा देते हो, आर्यसमाज के इस कथनमात्र से कुछ नहीं होता हमारा तोष तो तब ही होगा जब कोई इसका तोष-दायक उत्तर देगा।

यदि रेलबाजार आर्यसमाज में उत्तर देने की शक्ति नहीं थी तो फिर तीन वर्ष से किस हौसले पर ऊधम मचा रक्खा था और अब क्या उत्तर दिया, अब तो अच्छी तरह भद्द कराली। क्या आर्यसमाज के पराजय में अब भी कुछ सन्देह है ? वेद तो एक

तरफ धरा रहा, आर्यसमाज को तो ओखली मूसल ने ही ठीक कर दिया।

इस विषय में हम समस्त आर्यसमाजों और प्रतिनिधि-सभाओं तथा उनके नेताओं और गुरुकुल एवं कालेजों के अध्यक्षों तथा समस्त उपदेशकों, विद्वानों, सन्यासियों और प्रत्येक आर्यसमाजी पुरुष से प्रार्थना करते हैं कि इस विषय पर लेख लिखवाने की कृपा करें तथा आर्यसमाज कानपुर की गई हुई बात को रक्खें।

आर्यसमाज रैलबाजार कानपुर से प्रार्थना है कि वह इस विषय में कुछ द्रव्य खर्च करे। समस्त आर्यसमाजियों को पत्र लिखे कि जो कोई भी ठीक २ उत्तर दे सकता हो वह लेखनी उठावें, समाज की लाज रक्खे। हमारा तो विश्वास है कि इतना लिखने पर भी कोई आर्यसमाजी लेखनी न उठावेगा। क्या इतने पर भी आर्यसमाज का पराजय नहीं हुआ? यदि नहीं हुआ तो फिर तो वही बात है कि "मेरे घोड़े के तीन टांग"।

इन १० दलीलों में जो मकान के देवता को बलिदान लिखा है हमारी ओर से तृतीय पत्र में लिखा गया कि मकान का देवता कौन है? इसके उत्तर में आर्यसमाज ने कहा कि हमने तो मकान के देवता

का नाम भी नहीं लिया आप गालिप्रदान क्यों करते हैं। सना-तनधर्म की तरफ से चतुर्थ पत्र में कहा गया कि हमने कौन सी गाली दी है ज़रा पढ़ कर पब्लिक को सुना दीजिये। इसके ऊपर आर्यसमाज न तो गाली सुना सका और न आगे बोल सका। वास्तव में वह सनातनधर्म जो संसार के शत्रु सर्प को भी दूध पिलाता है, किसी को गाली दे सकता है? गाली देना यह काम आर्यसमाज का है। स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थ-प्रकाश में श्रीमहर्षि वेदव्यासजी को कसाई लिखा, क्या इसका नाम गाली नहीं है? गुरुकुल वृन्दावन में बाबुओं ने श्री पं० तुलसीरामजी स्वामी और पं० अखिलानन्द आदि २ समस्त ब्राह्मणों के समक्ष गालियां दी हैं। उन्हीं गालियों ने ब्राह्मण पार्टी खड़ी की है। सद्धर्म प्रचारक समाचार पत्र कई बार आर्यसमाजी ब्राह्मण विद्वानों को भाड़े का टट्टू लिख चुका है जिसके ऊपर वेदप्रकाश को लेखनी उठानी पड़ी थी। यदि आप अधिक गालियां देखना चाहते हैं तो बाबू कमचन्द्रजी एम० ए० उनकू ... उर्दू का ट्रैक्ट मंगवा कर पढ़िये इसमें एक आर्यकन्या ने आर्यसमाज और आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजी के लिये लिखा है कि लानत है ऐसे मज़हब पर, और लानत है

इस मज़हब के चलाने वाले पर, देखिये इनका नाम गाली है।

फिर ब्रजमोहन झा ने तृतीय पत्र में लिखा कि तुम मूर्तिपूजा का बहाना करके लोगों का धन हरण करते हो, हमको दुख है हमारे भाई चोंड़े में लूटे जाते हैं। इनका नाम गालियां हैं। क्या आर्यसमाज ने इसी लिए शास्त्रार्थ ठाना था कि शास्त्रार्थ में सनातनधर्म सभा को गालियां देकर ही आत्मा ठंडा करें। हमारी ओर से किसी पत्र में आर्यसमाज के लिये एक भी कटु शब्द नहीं लिखा गया तब भी गाली देना बतलाया जाता है। यह शोक है।क्या यह भी कोई शास्त्रार्थ है कि तुम धन हरण करते हो हमको दुख होता है। यह शास्त्रार्थ नहीं रहा किन्तु स्त्रियों कैसी लड़ाई हो गई। ऐसे शास्त्रार्थ के लिये के पं० बुलाने की क्या आवश्यकता। ऐसा शास्त्रार्थ तो बिना पढ़ा पुरुष भी कर सकता था। समाज को लज्जा आनी चाहिये कि गाली लिखे आप और सनातनधर्मियों से कहें कि तुम गाली देते हो। उलटा चोर कोतवाल कोडांटे।

यह सब कुछ हुआ किन्तु मकान के देवता पर आर्यसमाज एक अक्षर न लिख सका। जब लिखा गया कि तुम मकान के देवता को भोग लगाते हो तो आर्यसमाज इसका कुछ भी

उत्तर न दे बिल्कुल मौन हो बैठा। क्या इसी का नाम शास्त्रार्थ है? क्या लेखनी और ज़बान का बन्द हो जाना आर्यसमाज का पराजय नहीं है? पराजय में इससे अधिक और क्या होता है क्या हारनेवाले के सींग निकल आते हैं? शास्त्रार्थ में एक पक्ष दूसरे पक्ष की लेखनी या ज़बान बन्द करता है। ये दोनों हालतें मकान के देवता के निर्णय पर हुई हैं। अतएव हम डंके की चोट कहते हैं कि आर्यसमाज हार गया और ऐसा हारा कि आगे को भी इसका उत्तर नहीं दे सकता।

भोग तो पूरा हुआ। अब चला खेत के पटेले (पाटे) का पूजन। स्वामी दयानन्द जी ने "घृतेन सीता" इस यजुर्वेद के मन्त्र के भाष्य में लिखा है कि खेत के पटेले पर घी शक्कर दूध जल सहित चढ़ाओ। पूरा मन्त्र और स्वामी दयानन्दजी का भाष्य हमारी ओर से प्रथम पत्र (पृष्ठ १४०) में लकीर के नीचे लिख दिया गया है हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि एक बार उसको अवश्य पढ़लें।

जब सनातनधर्म की ओर से कहा गया कि आर्यसमाज मूर्ति-पूजक है क्योंकि वह खेत के पटेले पर दूध आदि चढ़ाता है तब इसके ऊपर आर्यसमाज ने कहा कि वहाँ पूजन नहीं है किन्तु

मजबूत करने के लिये पटेले पर घी लगाया जाता है। फिर कहा गया कि पटेला घी से पुष्ट होता है इसमें प्रमाण दो, आर्यसमाज ने लिखा कि पटेला घी से मजबूत होता ही है सनातन धर्म को इसमें शंका क्या है, इसके बाद एक अक्षर भी इस पर न लिखा। नहीं मालूम आर्यसमाजी भाई कितना घी पटेले में डालते हैं जिससे वह मजबूत हो जाता है।

जिस प्रकार आर्यसमाज ने अपने उत्तर को ठीक उत्तर समझ लिया है इसी प्रकार हमारे भी ऐसे ही उत्तर को यह ठीक समझ लेगा? इसलिये हम आर्यसमाज की भांति मूर्तिपूजा के ऊपर उत्तर देते हैं कि मूर्तिपूजन होता ही है इसमें आर्यसमाज को शंका ही क्या। कहिये हमारा यह उत्तर सन्तोषदायक है या नहीं? यदि सन्तोषदायक है तो मूर्तिपूजा पर आर्यसमाज की हार हो गई। यदि सन्तोषदायक नहीं तो फिर ऐसा ही उत्तर आर्यसमाज के लिये सन्तोषदायक कैसे हो गया? क्या आर्यसमाज ने अपने घर से नया कानून बना लिया है कि हमारे लिये इतना ही लिखना काफी है। न्याय दोनों पक्षों के लिये एक सा होता है।

ब्रजमोहन झा ने जो यह कहा कि घी से पटेला मजबूत किया जाता है इस पर हम प्रश्न करेंगे कि यह तुम को किसने बत-

लाया कि पटेले पर घी चढ़ाओ। झा जी कहेंगे कि वेद ने बतलाया। जिस वेद की रात दिन प्रशंसा दोनों पक्ष करते हैं उस में क्या यही गौरव है ? यह तो एक मामूली काश्तकारों के लिये छुरो का कानून है। पुराण के शास्त्रार्थ में ब्रजमोहन झा ने वेद मन्त्र से सांप पकड़ने का तरीका बतलाया था अब इस मूर्तिपूजा के शास्त्रार्थ में पटेला मजबूत करने की शिक्षा देते हैं। कल को कोई आर्यसमाजी वेद मन्त्रसे गोबर उठाने का तरीका बतलावेगा। यदि वेद में यही बातें हैं तो फिर उसका गौरव क्या और उसको ईश्वरीय ज्ञान क्यों समझा जावे ? ऐसे कामों के लिये तो मनुष्यों ने ईश्वर से अच्छे २ ग्रन्थ लिख दिये हैं।

जब वेद ने न तो खेत जोतने का तरीका बताया और न खेत में खाद डालने का, न हल बनाने का और न हल चलाने का, न बीज बोने का, न फसल काटने का, न बैल खरीदने का, न मालगुजारी देने का, तब ईश्वर को क्या पटेले ही से प्रीति था जो उसके मजबूत करने के लिये वेद में एक मन्त्र बढ़ा दिया। यदि थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि घी तो इसलिये चढ़ाया जाता है कि वह मजबूत हो जावे किन्तु इसका उत्तर ब्रजमोहन झा ने नहीं दिया कि शहद दूध शक्कर जल क्यों चढ़ाया जाता है।

फिर स्वामी दयानन्दजी ने यह लिखा कि ऐसा करने पर पटेला तुमको धी देगा। यदि आर्यसमाजियों को घी दूध चढ़ाने से पटेला घी दे सकता है। तो हमको पञ्चामृत से स्नान करवाने पर प्रभु रामचन्द्रजी क्या मोक्ष नहीं दे सकते ?

कौन कहता है कि यह पूजन नहीं ? पटेले के द्वारा घी का मिलना, अनेक वस्तुओं का उस पर चढ़ाया जाना, यह पूजन है। इसका उत्तर आर्यसमाज ने न तो शास्त्रार्थ में कुछ दिया और न आगे को दे सकता है। कोई हम को यह समझा दे कि पटेले से ईश्वर को अधिक प्रीति क्यों ? फिर उस पर घृतादि वस्तुओं के चढ़ाने का प्रयोजन क्या और वह पटेला किस प्रकार घी देगा ?

स्वामी दयानन्दजी ने पटेले का पूजन लिखा है। आर्यसमाज उससे घबराता है इसी कारण कुछ उत्तर नहीं देता। उत्तर का न देना ही पराजय है।

हमारी ओर से "वायवा याहि" इस ऋग्वेद के मन्त्र से दिखलाया गया कि स्वामी दयानन्दजी ने गिलोय के अर्क का निराकार ईश्वर को भोग लगाया है। भोग लगाना 'आर्याभिविनय' नामक पुस्तक में लिखा है। इसके ऊपर आर्यसमाज ने कहा कि ऋग्वेद भाष्य देखो। आर्यसमाज से पूछा गया कि किसका बनाया

भाष्य देखें, फिर लिखा गया कि भाष्य बिचारा क्या कर सकता है जब निरुक्त में लिखा है कि "हे ईश्वर तू पी"। इसके ऊपर समाज मौन हो बैठा।

निराकार ईश्वर को भोग लगाना वेद ने लिखा, निरुक्त ने लिखा, स्वामी दयानन्दजी ने अपनी लेखनी से लिखा। शास्त्रार्थ में इसके ऊपर आर्यसमाज का मुख और लेखनी बंद हो गई किन्तु माना कुछ नहीं। निराकार को मिलाय के अर्क का भोग न मानना वेद के निर्माता ईश्वर और निरुक्त के निर्माता मुनि यास्क एवं आर्याभिविनय के बनाने वाले स्वामी दयानन्दजी का अपमान करना है। इस अपमान के ऊपर आर्यसमाज अपने कर्त्तव्य पर क्या कुछ पश्चात्ताप करता है या स्वामी दयानन्द जी तथा यास्क और वेद के लेख को ब्रजमोहन झा के कथन के सन्मुख कुछ इज्जत ही नहीं देता। ऐसे ही पुरुषों को नास्तिक कहते हैं जो अपने धर्म-पुस्तक तथा अपने धर्म नेता के लेख को मिथ्या बताने में तनक भी लज्जा न करें किन्तु अपने पुरुषों के लेख को पददलित कर प्रसन्न हों।

हम किसी में ताब नहीं देखते कि जो वेद के मन्त्र और उसके निरुक्त तथा स्वामी दयानन्द के आर्याभिविनय के लेख को

मिथ्या बता कर ब्रजमोहन झा के कथन को सत्य सिद्ध करने का साहस कर सके। यदि किसी में साहस हो तो लेखनी उठावे।

सनातनधर्म ने वेद का प्रमाण दिया, निरुक्त का प्रमाण दिया, स्वामी दयानन्द के लेख का प्रमाण दिया किन्तु आर्यसमाज ने सब को झूठा बना दिया और आप सच्चा बन गया। प्रमाणों से हरा देना ही वादी का काम होता है किन्तु जब आर्यसमाज प्रमाण मानता ही नहीं तब फिर सनातनधर्म क्या करे।

स्वामी दयानन्दजी ने जिस निरुक्त की अपने ग्रन्थों में दिल-तोड़ प्रशंसा की है आज आर्यसमाज उस निरुक्त को इस कारण नहीं मानता कि उससे मूर्तिपूजा सिद्ध होती है। जिस वेद की प्रशंसा आर्यसमाज रात दिन करता है उसको आज इस कारण से नहीं मानता कि उसमें ईश्वर को भोग लगाना लिखा है जिन स्वामी दयानन्द जी को आर्यसमाज वेदोद्धारक महर्षि कहता है आज उनके लेख को इस कारण अपमानित करता है कि उन्होंने ईश्वर के लिये भोग लगाना लिख दिया। आर्यसमाज का क्या ही उत्तम सिद्धान्त है कि गर्ज़ पड़े तो सबको माने नहीं तो सबसे बड़ा आप ही बन बैठे।

इसी करतूत पर आर्यसमाज तीन वर्ष से शास्त्रार्थ के लिये

तैयार होकर ऊधम मचाया करता था ? यह शास्त्रार्थ है खेल नहीं है। निरुक्त तथा वेद और स्वामी दयानन्द के लेख को आर्यसमाज क्यों नहीं मानता इसका जवाब उसे देना होगा। क्या आर्यसमाज निराकार के इस भोग लगाने पर अपनी हार नहीं समझता ?

हमारी ओर से यह उत्तम रीति से सिद्ध कर दिया गया कि आर्यसमाज भी ईश्वर को हमारी भांति भोग लगाता है फर्क केवल इतना है कि हम लड्डू पेड़ा बर्फी हलुआ दाल भात रोटी का भोग लगाते हैं और आर्यसमाजी गुग्ल के अर्क का।

फिर संस्कारविधि में कुशा का पूजन दिखलाया कि स्वामी दयानन्दजी ने " ओ३म् औषधे त्रायस्व" मन्त्र लिखा है जिसका अर्थ यह होता है कि हे कुशा तू इस बालक की रक्षा कर। यह प्रार्थना है और प्रार्थना पूजा का अंग है। आर्यसमाजने इसके उत्तर में कहा कि वहां पूजा करनी नहीं लिखी कार्य करने वाले को आदेश किया है। आर्यसमाज ने जो उत्तर दिया है यह बनावटी है, मन्त्र का ठीक अर्थ यही है कि हे कुशा तू इस बालक को मत मारना।

सम्वत १९३३ की छपी संस्कारविधि के पृष्ठ ४७ पं० १२ में

स्वामी दयानन्दजी ने इस मन्त्र का भाष्य लिखा है वह यह है– हे औषधे तू इस बालक की रक्षा कर। स्वामी दयानन्दजी के भाष्य से हमारा कथन सत्य सिद्ध होता है और उसका कुछ भी उत्तर आर्यसमाज की तरफ से न होना यह एक ऐसा पराजय है जो समझदार के लिये काफी है।

इसके बाद सनातनधर्म ने दिखलाया कि आर्यसमाज नाई के छुरे का पूजन करता है। स्वामी दयानन्दजी ने छुरेके मन्त्र में सब से पहिले "ओं विष्णोर्दं ष्ट्रोऽसि जिसका व्याकरणादि की दृष्टि से ठीक अर्थ यह है कि "हे छुरे तू विष्णु की दाढ़ है"। लीजिये विष्णु को आर्यसमाज निराकार बतलाता था किन्तु उस निराकारके चार चार अंगुल की दाढ़ निकल पड़ी। अब तो और भी गजब हो गई। योरुप से लम्बे लम्बे छुरे आने लगे। अब आठ आठ अंगुल की दाढ़ आ गई। ईश्वर की दाढ़ चाहे कितनी ही लम्बी क्यों न हो जाय किन्तु आर्यसमाज उसको निराकार ही कहेगा। यदि दाढ़ वाला निराकार होता है तब तो संसार के समस्त ही मनुष्य आर्यसमाज की दृष्टि में निराकार रहेंगे।

इसके आगे स्वामी जी ने एक और मन्त्र लिखा है वह यह है कि "ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते" इस का

अर्थ यह है कि "हे तेज धार वाले छुरे तेरे पिता का नाम शिव है मैं तुझे नमस्ते करता हूं"। तीसरा मन्त्र यह है कि "मामाहिँ सीः" अर्थात् "हे छुरे तू इस बालक को मत मार"। इसके उत्तर में आर्यसमाज ने कहा कि यह प्रार्थना छुरे से नहीं किन्तु कार्यकर्ता से आदेश है कि तू इसको पवित्र रख। आर्यसमाज ने केवल इतना लिख दिया, लेखमें प्रमाण कुछ न दिया। यह भी कोई उत्तर है कि जो जी में आया वही कह दिया। यहां पर सब बातें छुरे से कही गई हैं फिर हम कैसे न समझें कि छुरे का पूजन है। स्वामी दयानन्द जी ने दो मन्त्रों का तो अर्थ नहीं किया किन्तु तीसरे मन्त्र का अर्थ किया है वह यह है कि "हे स्वधिते इस बालक को मत हिंसित कर" संस्कारविधि सम्वत् १९३२ पृ० ४७ पं० १३। १४ देखिये।

हमतो नहीं देखते कि कोई भी आर्यसमाजी समस्त मन्त्रों को लेकर यह सिद्ध कर देगा। कि आर्यसमाज छुरे का पूजन नहीं करता, जब आर्यसमाज नाई के छुरे को खुद पूजता है तब यह दूसरों के मूर्तिपूजन पर कैसे एतराज़ कर सकता है?

स्वामी दयानन्द की बतलाई मूर्तिपूजा का उत्तर न कोई समाजी आज तक दे सका है और न आगे को दे सकता है।

और इतने पर भी आर्यसमाज कहता है कि हम मूर्ति नहीं पूजते तो क्या हम इनको दयानन्द के विरोधी कहें तो कुछ अत्युक्ति है ? छुरे का पूजन सिद्ध है, इसका उत्तर न देना आर्यसमाज की मर्जी की सोलह आने ६४ पैसे हार है।

रुद्र पूजा

सनातनधर्म ने "त्र्यम्बकं यजामहे" मन्त्र देकर इसमें महादेव की मूर्ति का पूजन दिखलाया था। इस मन्त्र का जो अर्थ पं० कालूरामजी शास्त्री ने किया है वही अर्थ सायण, उव्वट, महीधर ने भी किया है। वेद भाष्यकारों की तो कौन कहे इस मन्त्र पर निरुक्त भी है। निरुक्त ने भी महादेव की मूर्ति का पूजन लिखा है। इसका समस्त निरुक्त प्रथम पत्र (पृष्ठ १४२) में लकीर के नीचे लिख दिया गया है। आर्यसमाज को कई बार यह दिखाया गया किन्तु उसने इसका कुछ भी उत्तर न दिया। जो न शास्त्रार्थ में उत्तर दे सके और न वेद की बात को माने एवं न अपने आचार्य के माने हुए निरुक्त को माने ऐसी सभा को धार्मिक सभा वही कह सकता है कि जिसने अपनी बुद्धि को बेच खाया हो। आर्यसमाज ने शास्त्रार्थ में इसका उत्तर क्यों नहीं दिया इसका कुछ आर्यसमाज के पास जवाब है? यदि आर्यसमाज

वैदिक बनने और वेद के मानने का दावा करता है तब तो उसको हज़ार बार ज़मीन में नाक रगड़ना होगी और महादेवजी की पूजा करनी होगी। इसका ज़वाब न देना आर्यसमाज का खाने-खाने फिक्र हो जाता है। है कोई आर्यसमाज में ऐसा विद्वान जो इसका उत्तर लिखे? लिखे तो तब जब कोई वेद पढ़े। यहां पर तो 'अगर्चे' 'मगर्चे' 'चुनांचे' 'चूंकि' आदि शब्दों से ही वेदपाठी बने हैं।

अब यातो आर्यसमाज को वेद और निरुक्त का कहा मूर्ति-पूजन करना चाहिये नहीं तो खुल्लमखुल्ला ऐलान कर देना चाहिये कि हमारा कोई मज़हब नहीं। पाठक गण? आपने देख लिया कि आर्यसमाज वेद को कितना मानता है। वेद का धोखा देकर लोगों को नास्तिक बनाना यह लज्जा की बात है।

यज्ञ पूजा

सनातनधर्म ने वेद का "तं यज्ञं" मन्त्र देकर यह दिखलाया कि सृष्टि के आरम्भ में ऋषि और साध्य तथा देवताओं ने ईश्वर का पूजन किया। इसके ऊपर आर्यसमाज की तरफ़ से उत्तर मिला कि इस मन्त्र में 'मूर्ति' का नाम तक नहीं। क्या अच्छा उत्तर दिया है। यदि मूर्ति का नाम निकल आया तब

आर्यसमाज कहेगा कि 'पूजन' का नाम नहीं लिखा, यदि पूजन भी निकल आया तब आर्यसमाज कहेगा कि 'करना' दिखलाओ, यदि करना भी निकल आया तब आर्यसमाज कहेगा कि मनुष्यों के लिये दिखलाओ, यदि मनुष्यों के लिये निकल आया तब आर्य-समाज कहेगा कि लिखे पढ़े के लिये दिखलाओ। यह भी कोई उत्तर है। यह तो वितंडावाद है। आर्यसमाज का यह लिखना कि "इसमें मूर्ति का नाम तक नहीं" सिद्ध करता है कि उसके पास कोई उत्तर नहीं। निकलने के लिये बहाना बनाने की खोज में है।

जब कि वेद ने यह दिखला दिया कि देवताओं ने यज्ञावतार भगवान का पूजन किया तब मूर्ति दिखलाने की क्या आवश्य-कता थी? फिर इसके ऊपर शतपथ ने यह लिखा कि परमात्मा ने यज्ञावतार रूप शरीर को अपनी मूर्ति बनाया। यज्ञावतार हुआ इसी से ब्रह्मा का नाम यज्ञ पड़ा। फिर आगे चल कर यह भी दिखलाया कि यह यज्ञ कुरुक्षेत्र भूमि में हुआ। जब से यह यज्ञ कुरुक्षेत्र भूमि में हुआ तब से कुरुक्षेत्र का नाम देवयजन पड़ गया। यह पं० कालूराम नहीं लिखते शतपथ लिखता है। जिस शतपथ के महत्व की डुग्गी स्वामी दयानन्द ने पीटी है और स्वयं स्वामी जी ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में लिखा है कि

वेद भाष्य वही मानना चाहिये जो शतपथ के अनुकूल हो किन्तु आज मूर्तिपूजा सिद्ध हो जाने के भय से वेद, शतपथ और स्वामी दयानन्द इन तीनों को झूटा साबित कर आर्यसमाज ब्रजमोहन झा को सच्चा बनाता है। इस अनुचित कार्य पर आर्यसमाज को तनक भी लज्जा नहीं। शोक है ऐसी वैदिक सोसाइटी पर और शोक है उन पुरुषों पर जो आर्यसमाज को वैदिक माने बैठे हैं!

ब्रजमोहन झा ने उत्तर दिया कि यह तो महीधर ने मानसिक यज्ञ लिखा है। हमने कहा बहुत ठीक! मानसिक के माने ब्रजमोहन झा यह लगाना चाहते हैं कि मन से ही पूजन किया मूर्ति आदि वहां कुछ नहीं थी। मानसिक का अर्थ यह नहीं है किन्तु मानसिक का अर्थ है कि मन शक्ति प्रधान यज्ञ, देवताओं के मन ने जब चाहा कि इस समय भगवान हमको दर्शन दें उसी क्षण में दर्शन दिया इस कारण इसका नाम मानसिक यज्ञ पड़ा। अन्यथा अर्थ करने में शतपथ से विरोध आवेगा। शतपथ ने स्वतः लिखा है कि ईश्वर ने यज्ञ नामक प्रतिमा बनाई।

आर्यसमाज यदि अब भी उत्तर दे सके तब तो वह उत्तर

देने का प्रयत्न करें और यदि उत्तर देने में असमर्थ है तो यज्ञावतार की पूजा माने। आप कुछ न करना और वेदों को केवल तर्क से उड़ाना आर्यसमाज की यह चालबाजी बहुत दिन नहीं चल सकती। अब देखना है कि यज्ञावतार के पूजन में आर्यसमाज रेलबाजार अपने विद्वानों से क्या उत्तर दिलवाता है।

हम पहिले ही जानते थे कि आर्यसमाज के पास वेदों के लेख का कोई उत्तर नहीं इसी कारण शास्त्रार्थ करने को तैयार नहीं होते थे। आर्यसमाज ने समझा कि ये डर गये। ऐसा समझकर उसने श्रीब्रह्मावर्तसनातनधर्ममहामंडल के उत्सव पर उपद्रव मचा कर उत्सव में विघ्न डालना चाहा तब हमको उठना पड़ा। जब हम उठे तब आर्यसमाज घबरा गया उत्तर नहीं दे सका। जरा जरा सी बातों को अपने मन से गढ़ कर वेदों पर कुल्हाड़े चलाना ब्रजमोहन झा ने आरम्भ कर दिया।

❀ महावीर ❀

हमने यजुर्वेद अ० ३७ मन्त्र १ का शतपथ ब्रैकर दिखलाया कि इस स्थान में यज्ञ के समय महावीर नामक प्रजापति की एक बिलस्त की मूर्ति बनती है। शतपथ कहता है कि इस

एक बिलस्त की मूर्ति में तीन अंगुल का शिर बनाओ, फिर आंख बनाओ, कान बनाओ आदि आदि अंगों को बना कर फिर उस मूर्ति का पूजन करो। इसका समस्त शतपथ हमने प्रथम पत्र (पृष्ठ १५२,१५३) में लकीर के नीचे लिख दिया है। आर्यसमाज इसका कुछ भी उत्तर न दे सका, इसके उत्तर में एक अक्षर भी न लिख सका। आर्यसमाज इस प्रकरण में सोलह आने मौन धारण कर बैठा। क्या यह आर्यसमाज की हार नहीं है? जब कि वेद में महावीर की मूर्ति बनाना और पूजना लिखा है तब अपने को वैदिक कहनेवाला आर्यसमाज उससे कैसे बच सकता है? यह अन्धेर अब अधिक दिन नहीं चल सकता क्योंकि संसार अच्छे प्रकार जानने लगा है कि वेदों में मूर्तिपूजा ठसाठस भरी पड़ी है और आर्यसमाज जो कहता है कि वेदों में मूर्तिपूजा नहीं है वह अपनी अनभिज्ञता से कहता है। आर्यसमाजी वेद में लिखी हुई मूर्तिपूजा को जो पोपलीला समझते हैं इस पर तो हमको बहुत ज्यादा थोड़ा शोक नहीं है किन्तु शोक इस बात का अवश्य है कि वे महर्षि स्वामी दयानन्द के लेखों को पैरों के नीचे कुचल रहे हैं। जब स्वामी दयानन्द ने शतपथ के महत्व की डुग्गी पीटी और उसी शतपथ ने महावीर की मूर्ति बनाना लिखा फिर वे क्यों नहीं मानते? सच तो यह है कि जो अपने

आचार्य का अनादर करता है वह समस्त संसार का अनादर कर सकता है।

❀ ब्रह्म के रूप ❀

हमने आर्यसमाज के निराकार प्रतिपादक मन्त्र सुनकर कहा कि आपने जो मन्त्र दिये हैं ये ठीक हैं इनमें निराकार का वर्णन है साकार का नहीं किन्तु वेदों में ब्रह्म को निराकार और साकार दो प्रकार का वर्णन किया है। इसमें हमने प्रथम प्रमाण शतपथ का "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे" दिया, फिर दूसरा प्रमाण महावीर की मूर्ति के प्रकरण का "उभयं वा एतत्प्रजापतिः" दिया। इस पर आर्यसमाज ने पहिले मन्त्र में तो यह कहा कि जगत के दो रूप हैं, और दूसरे मन्त्र का उत्तर गायब। ब्रह्म शब्द से आर्य-समाज ने जगत लिया। यह किस व्याकरण, कोष, निरुक्त, निघंटु के अनुकूल है? यह तो वही बात हुई कि एक पुरुष ने किसी से पूछा कि बिल्ली के क्या माने हैं? उसने उत्तर दिया कि बिल्ली के माने इमरती हैं। उसने कहा कि कहीं बिल्ली के माने भी इमरती होते हैं? जवाब दिया कि हां होते हैं। पूछा कि कहां? उत्तर दिया कि आर्यसमाज रेलबाजार के दफ्तर में। उसने कहा कि ऐसा झूठ नहीं हो सकता? जवाब मिला कि यदि बिल्ली के

माने इमरती नहीं हो सकता तो फिर हजारों आर्यसमाजों के चिल्लाने पर भी ब्रह्म के माने जगत नहीं हो सकता। क्या आर्य-समाज को ब्रह्म के माने जगत लिखते समय तनक भी लज्जा न आई? ब्रह्म के माने जगत जो [illegible] ने किया है यह किस व्याकरण से किया है? अरबी या फारसी से, अंगरेजी से या लाइटिन से? ब्रह्म के माने जगत तो वही लिख सकता है जो सर्वथा ही अकल का दुशमन हो। क्या आर्यसमाज कानपुर ब्रह्म के माने जगत सिद्ध करने को फिर भी तैयार है? [illegible] मौके पर ध्यान डालना थी। जो लोग ब्रह्म के माने जगत करते हों ऐसे संस्कृत-साहित्य के शत्रुओं को दूर से ही नमस्कार है। यदि ऐसे ही अर्थ करने थे तब तो इस शास्त्रार्थ में पंडितों की क्या आवश्यकता थी तब तो सनातनधर्म सभा का चपरासी और आर्यसमाज का चप-रासी यही दोनों काफी थे।

"उभयं वा एतत्प्रजापतिः" इस मन्त्र में साफ साफ लिखा है कि ईश्वर (प्रजापति) दो प्रकार का है। एक कहने में आता है और एक कहने में नहीं आता, एक परमित है एक अपरमित। जो परमित है और कहने में आता है यजुर्वेद में कही हुई यज्ञों में उसका पूजन होता है और जो अपरमित है तथा कहने में

नहीं आता उसका साक्षात्कार आत्मा को होता है। यह शतपथ हमने द्वितीय पत्र (पृष्ठ १४७) में रेखा के नीचे लिख दिया है। इसके उत्तर में आर्यसमाज मौन धारण कर गया। क्या अब भी आर्यसमाज की हार नहीं है? जब वेद ब्रह्म के साकार और निराकार दो प्रकार के रूप बतला रहा है तब कौन वैदिक है जो उसके मानने में सिर हिलाता है? यदि आर्यसमाज को सिर हिलाना था तो कुछ जवाब देना था। क्या इसी करतूत पर आर्यसमाज चैलेंज दे बैठा था? यहां पर तो वही बात हुई— किसी ने कहा कि मां मैं काशी के समस्त पंडितों को जीत आया, इसको सुनकर उसकी मां बोली कि बेटा तू तो निरक्षर है और काशी में बड़े बड़े पंडित हैं तू उन्हें कैसे जीत आया। बेटे ने जवाब दिया कि मैंने किसी की भी नहीं सुनी। यही हाल आर्यसमाज भी करता है। हम मन्त्र देते हैं आर्यसमाज सुनता भी नहीं, तब भी जीत आर्यसमाज की होती है और सि-कंजे में पं० गिरिधराचार्य जी आते हैं। शोक है आर्यसमाज की ऐसी करतूत पर!

+ अवतार +

"प्रजापतिश्चरति गर्भे" इस मन्त्र का समस्त अर्थ देकर

लिखा गया कि यह मन्त्र ईश्वर का शरीर धारण करना, अवतार लेना लिखता है। मन्त्र कहता है कि प्रजापति ईश्वर गर्भ के भीतर आता है और अजन्मा होता हुआ भी बहुत प्रकार से उत्पन्न होता है उसके शरीर को धीर पुरुष देखते हैं जिस ईश्वर में ये समस्त भुवन ठहरे हुये हैं। आर्यसमाज ने इसके उत्तर में कहा कि इसमें अजन्मा पद पड़ा है जिसका अर्थ यह है कि ईश्वर अजन्मा हो कर भी गर्भों में ठहरा है। आर्यसमाज ने क्या ही अच्छा उत्तर दिया कि आधे मन्त्र का अर्थ तो सोलह आने ग़ायब, पूर्वार्द्ध में भी "बहुधा विजायते" इतने पद ग़ायब। अपने मतलब के दो टुकड़े लेकर मनमाना अर्थ करना और बाकी के मन्त्र को धता बुलाना यह वेद का मानना नहीं किन्तु सरासर अन्याय है। ब्रजमोहन झा समझते हैं कि हम बड़ी चालाकी करते हैं हमारे जैसा चालाक संसार में कोई नहीं, हम अपनी चालाकी से समस्त संसार की आंखों में धूल झोंकते हैं किन्तु आर्यसमाज को यह याद रखना चाहिये कि यह चालाकी ही उस को धूल में मिला देगी। हाय हाय, चालाकियों से वेद का सत्यानाश! एक टुकड़े को पकड़ कर बाकी मन्त्र छोड़ देना भी कोई अर्थ है! आर्यसमाज समझता है कि जो कहीं पूरे मन्त्र का

अर्थ किया तो अवतार सिद्ध हो जायगा किन्तु इस चालाकी से मन्त्र कहीं भाग नहीं गया। मन्त्र ज्यों का त्यों है। इसमें ईश्वर का अनेक प्रकार के शरीर धारण करना और उन शरीरों को भक्तों द्वारा देखा जाना कोई मिटा नहीं सकता। स्वामी दयानन्द जी ने भी इस से ही मिलता जुलता अर्थ किया है। और तो हम क्या कहें पृथिवी पर एक भी आर्यसमाजी पुरुष ऐसा पैदा नहीं हुआ कि जो इस मन्त्र में से ईश्वर का अवतार धारण करना मिटा दे। जब इस में ईश्वर का शरीर धारण करना लिखा है तब आर्यसमाज को मानने से इनकार क्यों? मंत्र के तीन अक्षर मान कर समस्त मंत्र को छोड़ देना क्या इसी का नाम वेद मानना है? यह वैदिकता नहीं किन्तु नास्तिकता है। इस नास्तिकता को हम आर्यसमाज को बधाई देते हुये सूचना देते हैं कि वे दिन समीप आ गये हैं कि जिन दिनों में आर्यसमाज वेद और स्वामी दयानन्द दोनों से खुल्लमखुल्ला विमुख हो जावेगा। जब ब्रजमोहन झा जी वेदों का अर्थ नहीं कर सकते थे और यह जानते थे कि "प्रजापतिश्चरति" मन्त्र हमारे लिये शत्रु बना बैठा है तो फिर किस लिये शास्त्रार्थ को उठे थे? केवल इसलिये कि चाहे आर्यसमाज को कितनी ही हानि पहुंचे किन्तु

हमारी प्रसिद्धि हो जावे और हमारा नाम दिल्ली के पांचवें सवार में लिखा जावे।

फिर हमारी ओर से एक मंत्र 'एषोह देवाः' आगे रख कर दिखलाया कि इस में ईश्वर का शरीर धारण करना लिखा है। यह मन्त्र कहता है कि यह प्रसिद्ध परमात्मा देव सब दिशा विदिशाओं में व्यापक है वही सब से पहिले गर्भ में आकर उत्पन्न हुआ और वही आगे को उत्पन्न होगा जो मनुष्यों के सन्मुख चारों तरफ मुख करके ठहरा है। इस के उत्तर में आर्य-समाज ने लिखा कि इस मंत्र का यह अर्थ है कि वह गर्भ के मध्य में ठहरा है। नहीं मालूम यह 'ठहरा' अर्थ किस पद का बना लिया। "गर्भ के मध्य में" इतना अर्थ तो लिया मन्त्र का और "ठहरा है" इतना अपनी तरफ से बना लिया। बस पूरे मन्त्र का अर्थ हो गया। यह कौन बुद्धिमान मान लेगा कि पूरे मन्त्र का इतना ही अर्थ है। यह तो मन्त्र के सोलहवें हिस्से का अर्थ है पंद्रह हिस्से तो अभी बाकी रक्खे हैं जो आर्यसमाज को जड़ से उखाड़ कर संसार से बिदा करने को कटिबद्ध हैं। वेद का जैसा सत्यानाश इस आर्यसमाज ने किया है ऐसा तो किसी मुसलमान बादशाह ने भी नहीं किया! आर्यसमाज चालाकियां

कर कर के रात दिन वेद पर कुल्हाड़ा चलाता है। ऐसी सी चालाकी कर आर्यसमाज अपने को मान बैठता है कि हम जीत गये। चालाकी करना ही आर्यसमाज का मुख्य धर्म है। यह न तो वेद को माने और न स्वामी दयानन्द जी के लेख को!

इन दोनों ग्रन्थों में स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वर का शरीर धारण करना लिखा है किन्तु आज ब्रजमोहन झा स्वामी दयानन्द के लेख को इस प्रकार पैरों के नीचे कुचलते हैं जैसे किसी महान् शत्रु के लेख को कुचला करते हैं। जब इन दो ग्रन्थों के भाष्य में स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वर का शरीर धारण करना लिखा है तब तो अवतार सिद्ध है। आर्यसमाज माने या न माने। कल को यदि आर्यसमाज यह कहने लगे कि मनुष्यों के धड़ के ऊपर शिर नहीं होता तो क्या उसके कहने से शिर उड़ जावेगा। मनमानी कहने से और मानने से कुछ नहीं होता। इन दोनों मन्त्रों में ईश्वर का अवतार धारण करना मौजूद है, आर्यसमाज कानपुर तीन लाख जन्म लेकर भी इसको मिटा नहीं सकता और न कुछ जवाब दे सकता है कहने के लिये स्वामी दयानन्द जी ब्रह्मचारी थे, योगी थे, आप्त थे, देशोद्धारक थे, महर्षि थे, इत्यादि शब्द कहता है और अब स्वामी जी का

लेख आगे आवे तो ब्रजमोहन झा के आगे स्वामीजी कुछ भी न ठहरें ! क्या इसी बहादुरी पर आर्यसमाज को सच्चा मज़हब और सनातनधर्म को पोपलीला कहा जाता है ? आर्यसमाज को इस पर कुछ तो लज्जा आनी चाहिये थी। इन दोनों मन्त्रों का जवाब हम को कब मिलेगा इसका भी कुछ पता लगना चाहिये ?

× ब्रह्मावतार ×

पं० कालूरामजी शास्त्री ने "पूर्वी यो देवेभ्यो" इस मन्त्र को आगे रख कर आर्यसमाज से कहा कि वेदों में निराकार ईश्वर का ब्रह्मा रूप से प्रकट होना लिखा है फिर आर्यसमाज कैसे कहता है कि ईश्वर केवल निराकार है ! ब्रह्मा का अवतार महीधर, उव्वट, सायण, आदि २ समस्त भाष्यकारों ने लिखा है। भाष्यकारों को छोड़कर "ब्रह्मा देवानाम्" मुण्डकोपनिषद् ने लिखा है और "तदण्ड" इस श्लोक में मनु ने लिखा है। इसके ऊपर आर्यसमाज मौन धारण करके बैठ गया क्योंकि आर्यसमाज बड़ा सीधा है कोई दो बातें कह जावे तो चुपचाप सुन लेता है। जिस आर्यसमाज ने तीन वर्ष तक ऊधम मचाया था वह आज बन्द क्यों हो गया ? क्या अपने सीधेपन से ! नहीं नहीं, लाचारी से। उसके पास कुछ भी जवाब नहीं है। जवाब हो या न हो

जवाब का न देना ही शास्त्रार्थ में हार है, वह आर्यसमाज के ऊपर खासी चार्जशीट लग गई है जिसका आगे को भी कुछ जवाब नहीं है। ब्रजमोहन झा को कुछ जवाब थोड़े ही देना था उन्हें तो दो बातें करनी थीं एक तो यह कि अपना नाम समाजी विद्वानों में हो जावे दूसरे यह कि चाहे हम कितना ही हारें किन्तु कानपूर गज़ट में तो हमारी जीत छपना ही है। कहिये कहां गया वह आर्यसमाज का कानपुर गज़ट जो मौन हो गया। अब उसको अपने पिछले व [illegible] [illegible] ब्रह्मशास्त्र का मुकाबला करके ब्रह्मावतार का जवाब देना चाहिये। एक आर्यसमाज का कानपुर गज़ट तो क्या [illegible] [illegible] और आवें तब तो ब्रह्मावतार का जवाब हो ही नहीं सकता।

+ वाराहावतार +

पं० कालूराम शास्त्री जी ने अथर्ववेद का मन्त्र "वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय" आगे रख कर आर्यसमाज से कहा कि वेदों में वाराह अवतार लिखा है। इसके ऊपर आर्यसमाज ने उत्तर दिया कि इसका शास्त्रार्थ से कोई संबंध नहीं। क्या अच्छा उत्तर है। जब आर्यसमाज निराकार के प्रमाण दे तब तो सम्बन्ध है और जो कहीं हमारी ओर से

साकार का प्रमाण दे दें तो सम्बन्ध ही नहीं। मिश्रवर ! निर्णय तो ईश्वर के साकार निराकारपन का है। क्या यह श्राद्ध का शास्त्रार्थ है जो अवतार से सम्बन्ध नहीं ? उत्तर तो देखिये कैसा अच्छा है।

फिर जब हमारी ओर से आग्रह किया गया तब व्रजमोहन झा ने वाराह का अर्थ किया कि "वरम् ! आहारः" वराह। इसका भावार्थ हुआ कि श्रेष्ठ आहार। अच्छा हमने कुछ देर के लिये इतना तो मान लिया, इससे आगे है इसका विशेषण 'सूकराय' बतलाइये अब दोनों को मिला कर क्या अर्थ हुआ, यही न कि श्रेष्ठ आहार सूकर। धन्य है आर्यसमाज को, और धन्य है आर्यसमाज द्वारा की हुई इन चालाकियों को। कहीं चालाकी से भी किसी ने विजय पाई है। यह शास्त्रार्थ है बच्चों का खेल नहीं है। वाराह अवतार प्रतिपादक मन्त्र का या तो जवाब देना होगा और नहीं तो आर्यसमाज को पराजय मानना पड़ेगा। कुछ भी हो ठीक जवाब तो आर्यसमाज के पास है नहीं इसको तो केवल चालाकी करके वेद का गला घोटना आता है। वेद भी जन्म भर याद करेगा कि हमें भी कोई मिला था। इसी का नाम वेद मानना है ? आर्यसमाज को डंके की चोट ऐलान करना चाहिये

कि लोगों को धोखा देना और चालाकी करना ही समाज का काम है। क्या आर्यसमाज वाराह अवतार के ऊपर क़यामत तक कभी कुछ विचार करेगा ?

+ वामन अवतार +

फिर आर्यसमाज से कहा गया कि वेद में वामन अवतार लिखा है और उस वामन अवतार का "इदं विष्णुर्विचक्रमे" मन्त्र है। यह मन्त्र कहता है कि विष्णु ने इस दृश्यमान जगत को नापा और तीन कदम रक्खे। आर्यसमाज ने इसके उत्तर में कहा कि विष्णु नाम है व्यापक का, व्यापक सूर्य ने अपनी किरणों से तीनों लोक प्रकाशित कर रक्खे हैं। हमने लिखा कि यह क्या कर गये। सूर्य को व्यापक बतला गये, यदि सूर्य व्यापक होगया तब तो रात्रि का होना असम्भव है। इससे भिन्न "विचक्रमे" क्रिया है जिसका अर्थ पैर का धरना उठाना ही होता है। महर्षि पाणिनि ने व्याकरण में इस पद के लिये "वेः पादविहरणे" नियमार्थक सूत्र रक्खा है जिसका अर्थ यह है कि विचक्रमे वहां ही बनेगा जहां पर इसका अर्थ पैर का धरना उठाना ही होगा। इसको सुन कर आर्यसमाज फिर मौन हो गया, वास्तव में एक चुप हजार को हराता है। आर्यसमाज

का मौन धारण करना सिद्ध कर रहा है कि इसका दिवाला निकल गया। इसके पास अब कोई जवाब नहीं रहा। आर्य-समाज को शास्त्रार्थ करने से पहले सोचना चाहिये था कि जब हमारे पास किसी भी मन्त्र का जवाब नहीं तो फिर हम किस हौसले पर मैदान में उतरते हैं। जवाब न होना यही हार होती है। हम देखना चाहते हैं कि वामन अवतार का अब भी आर्यसमाज क्या जवाब देता है, जवाब क्या देगा कुंभकरणी नींद में खर्राटे लिया करेगा।

+ निराकार +

जिस प्रकार हमने साकार के मन्त्र आर्यसमाज के आगे रक्खे उस प्रकार तो नहीं किन्तु एक मन्त्र "सपर्य्यगात्" आर्य-समाज ने हमारे आगे रक्खा कि वेदों में ईश्वर निराकार बतलाया गया। इस मन्त्र के आगे रखने के बाद ही हमारी ओर से ईश्वर को दो प्रकार के बतलाने वाले मन्त्र रक्खे गये और फिर अवतार प्रतिपादक मन्त्र रक्खे गये और यह कहा गया कि इस मन्त्र में कहा ईश्वर निराकार ठीक है, और हम जो अवतार के मन्त्र आपके आगे रखते हैं उनसे साकार भी ठीक है। साकार प्रतिपादक मन्त्र निराकार का खण्डन नहीं करते

और निराकार प्रतिपादक मन्त्र साकार का खण्डन नहीं करते इस कारण ईश्वर के साकार निराकार ये दो रूप हैं।

आर्यसमाज ने "सपर्यगात्" जो हमारे आगे रक्खा वह आधा ही रक्खा, यदि पूरा रख देता तो उसमें भी स्वयम्भूः पद आ गया है। "स्वयंभवतीति स्वयम्भूः" जो अपने आप शरीर धारण करे उसका नाम स्वयम्भू है। स्वयम्भू शब्द पर ईश्वर का शरीर धारण करना हम ही नहीं लिखते किन्तु मनु जी महाराज लिख रहे हैं कि "ततः स्वयम्भुर्भगवान्" इस श्लोक का अर्थ यह है कि प्रलय काल के अनन्तर स्वयम्भूः परमात्मा इस अव्यक्त संसार को प्रकट करता हुआ अन्धकार को दूर करता हुआ प्रकट हुआ। मतलब हमारा यह है कि हम तो ईश्वर को साकार और निराकार दोनों प्रकार का मानते हैं और इस मन्त्र में दोनों प्रकार का है। यदि एक प्रकार का भी हो तब भी उसके साकार होने में निषेध नहीं पहुंचाता।

इसके अनन्तर समाज को जब वेदों में एक भी मंत्र निराकार का न मिला तब उपनिषदों में दौड़ा और उपनिषदों से निराकार बतलाना आरम्भ किया। आर्यसमाज उपनिषदों को स्वतःप्रमाण

तो मानता नहीं फिर नहीं मालूम अपनी ग़र्ज़ के लिये यह उपनिषदों में क्यों दौड़ता है।

उपनिषदों का एक मन्त्र "सर्वेन्द्रियगुणाभासं" लिखा और दिखलाया कि वेद में ईश्वर निराकार है। आज आर्यसमाज ने उपनिषदों को वेद मान लिया। हमारी इससे क्या हानि, निराकार ईश्वर का वर्णन कोई करे तो उससे साकार का खण्डन नहीं होता। या तो आर्यसमाज हमारे साकार प्रतिपादक मन्त्रों का ऐसा अर्थ कर देता कि जिस से वे समस्त निराकार को कहने लगते या आर्यसमाज कोई ऐसा मन्त्र देता कि जिस में यह लिखा होता कि ईश्वर अवतार धारण ही नहीं करता तब तो हमारा पक्ष निर्बल हो जाना संभव था किन्तु निराकार से हमारी कोई हानि नहीं है।

आर्यसमाज ने "सर्वेन्द्रियगुणाभासं" इस मन्त्र के आगे रखते समय यह न समझा कि इसके पूर्व की दो श्रुतियां क्या कह रही हैं—

पुरुषएवेदॅसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्ने नातिरोहति॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् ।

प्रथम श्रुति में यह दिखलाया है कि जो कुछ भी भूत, वर्तमान भविष्य समय में दृष्टिगोचर होता है वह सब ईश्वर है। दूसरी श्रुति में यह दिखलाया है कि ईश्वर के चारों तरफ हाथ पाँव आँख मुख और शिर हैं और वह सब को आच्छादित करके ठहरा है। इसके बाद तीसरी श्रुति में निराकार दिखलाया। आर्यसमाज ने निराकार को कहने वाली तीसरी श्रुति तो ले ली और दो श्रुतियां छोड़ दीं। यह आर्यसमाज की चाल है।

इस चाल का कारण यह है कि प्रथम श्रुति में जो दृश्यमान जगत को ब्रह्म बतलाया है उसको आर्यसमाज चंडूखाने की गप्प समझता है और दूसरी श्रुति में जो ईश्वर के हाथ पैर आंख सिर और मुख बतलाये गये हैं उनको पोपलीला समझता है। इन दो के बाद तीसरी श्रुति की बात सच्ची समझता है। आर्य-

समाज को अधिक बखेड़ा करना नहीं आता वह तो वेदों में से भी अपने मतलब की बात लेता है बाकी के वेदों को नमस्ते करता है। अजब किस्म का धर्म है। कुछ भी हो, यहां पर भी ईश्वर साकार और निराकार दोनों रूपों से वर्णन किया गया है। इसके आगे आर्यसमाज ने उपनिषद् की एक और श्रुति रक्खी है। वह यह है "अशब्दमस्पर्श" इत्यादि। इसको हम मानते हैं कि इस श्रुति में निराकार ईश्वर का वर्णन है। इस से हमारी कोई हानि नहीं है किन्तु जिन उपनिषदों की ये श्रुतियां निराकार कह रही हैं उन्हीं उपनिषदों में साकार ईश्वर का वर्णन भी तो ठसाठस भरा पड़ा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
तथा त्वयं सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

अर्थात् समस्त भुवन में प्रविष्ट निराकार अग्नि जैसे अनेक साकार शरीर धारण करता है इसी प्रकार समस्त भूतों का आत्मा ईश्वर निराकार रूप से ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट होता हुआ भी अनेक शरीर धारण करता है।

क्या उपनिषदों में निराकार और साकार दोनों रूपों का वर्णन नहीं है फिर आर्यसमाज निराकार प्रतिपादक श्रुतियों को ही क्यों आगे रखता है ? निराकार के कहने वाली श्रुतियां तो आर्यसमाज की दृष्टि में वेद हैं और साकार की कहने वाली श्रुतियाँ आर्यसमाज को प्रमाण नहीं, इस कतर ब्योंत से संसार कब तक धोखे में रहेगा। कुछ भी हो उपनिषदों में निराकार और साकार दोनों रूपों का वर्णन है फिर उपनिषदों से आर्य-समाज क्या निकालना चाहता है ?

❀ मूर्ति ❀

मूर्तिपूजन के विषय में आर्यसमाज सर्वदा एक मन्त्र को आगे रखता है सब से प्रथम उस मन्त्र को पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे लिखते हैं—

न तस्य प्रतिमा अस्ति
यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भ इत्येष मामाहिं ॐ सी,
दित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः ॥

व्रजमोहन झा ने इस मन्त्र में से आधा मन्त्र उठा के मूर्ति पूजन का खण्डन करना आरम्भ किया। उन्होंने कहा कि यह

मन्त्र कहता है कि उस परमात्मा की प्रतिमा अर्थात् मूर्ति नहीं। जो परमात्मा महद्यश है। इस के ऊपर ब्रजमोहन झा ने महीधर भाष्य भी दिया। दिखलाया कि महीधर स्वतः लिखते हैं कि "प्रतिमा प्रतिमानम् उपमानम् किञ्चिद्वस्तु नास्ति" इतना लिख कर ब्रजमोहन झा ने पढ़ा और दिखलाया। इस के बाद सनातन धर्म ने उत्तर देना आरम्भ किया।

सनातनधर्म ने उत्तर दिया कि इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति नहीं किन्तु "प्रतिमीयते अनया सा प्रतिमा" होता है अर्थ यह हुआ कि उसके तुल्य (समान) कोई नहीं और महीधर, सायण, उव्वट और शंकर आदि आदि सबने यही अर्थ किया है कि "तस्य प्रतिमा न अस्ति" उस ईश्वर के तुल्य कोई नहीं। यहां पर उस शब्द को कहा गया है इस कारण यह प्रश्न होगा कि जिस के तुल्य नहीं वह कौन परमात्मा है आगे मन्त्र बतलाता है कि वह ईश्वर जो महद्यश वाला है और जिसको हिरण्यगर्भ मन्त्र में वर्णन किया है तथा जिसको "मामाहि ँ सीः" इस मन्त्र में कहा गया है और जिसका वर्णन "यस्मान्नजातः" इस मन्त्र में वर्णन किया है। प्रथम विवाद यह था कि ब्रजमोहन झा तो प्रतिमा का अर्थ मूर्ति करते थे और सनातनधर्मी पण्डित

प्रतिमा शब्द का अर्थ तुल्य करते थे जब सनातनधर्मी पण्डित ने यह कहा कि प्रतिमा शब्द का अर्थ तुल्य होता है तब ब्रजमोहन झा ने लिख दिया कि महीधर भाष्य देख लो।

महीधर भाष्य में प्रतिमा का अर्थ किया है "प्रतिमानम्" फिर इसको साफ किया कि "उपमानम्" उपमानम् का अर्थ तुल्य होता है अर्थात् महीधर यह लिखते हैं कि उस परमात्मा की उपमा के योग्य (तुल्य) कोई नहीं। समाजी महाशय को इतना मालूम न हुआ कि उपमानम् का अर्थ उपमा या समता को छोड़ त्रिकाल में भी मूर्ति नहीं होता। मालूम होता है कि केवल हिन्दी पढ़ी लिखी जनता को धोखा देने के लिये ही ब्रजमोहन झा ने यह धूर्तता की है कि वे बेचारे संस्कृत के पदों को क्या समझ सकेंगे।

आर्यसमाज ने कोई प्रमाण ऐसा नहीं दिया कि जिस प्रमाण को आगे रख हम प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति कर लें फिर बिना प्रमाण के मनमाना अर्थ कोई विचारशील मनुष्य ज़बर्दस्ती से कैसे मान लेगा ?

पं० कालूराम जी शास्त्री ने यह कहा कि आप जो कहते हो कि ईश्वर की मूर्ति नहीं और फिर हेतु देते हो कि वह बड़े

भारी यश वाला है इस कारण उस का मूर्ति नहीं यह हेतु आप का विरुद्ध हेतु है। यश वाला होने से मूर्ति का खण्डन नहीं होता किन्तु मण्डन होता है। अच्छा हेतु दिया कि कृपाशंकर को तीन फर्लांग से दीखता है क्योंकि वह जन्मान्ध है और छज्जूसिंह को मनुष्य की आवाज तीन मील से सुनाई देती है क्योंकि उसके दोनों कान नहीं। राम प्रताप रेल के बराबर चल सकता है क्योंकि उस के पैर नहीं। ऐसे २ विरुद्ध हेतुओं से इष्ट की पुष्टि नहीं होती किन्तु खण्डन होता है। ब्रजमोहन झा कहते हैं कि ईश्वर की मूर्ति नहीं क्योंकि वह बड़े यश वाला है। किन्तु महाशय! यश वाला कहने से तो मूर्ति का मण्डन होता है खण्डन नहीं।

सनातनधर्म की ओर से कहा गया कि आर्यसमाज सब से बड़ा यश वाला स्वामी दयानन्द जी को मानता है इस कारण स्वामी जी की मूर्ति (फोटू) लगवाता है। संसार में सब से भारी यश वाले प्रभु पंचम जार्ज हैं उनकी मूर्ति गिन्नी पर, रुपये पर दुअन्नी और इकन्नी पर, टिकट पर, रहती है। मूर्ति तो संसार में यश वालों की ही होती है। इसके ऊपर आर्यसमाज ने कहा कि यश वाले की मूर्ति तो होती है किन्तु पूजी नहीं जाती

यहां पर मूर्ति होने को स्वीकार कर लेना ही आर्यसमाज की पूरी हार है।

जो हेतु इस बात का था कि ईश्वर के मूर्ति हो नहीं वह हेतु यह है कि वह बड़े भारी यश वाला है। जिस यश को लेकर आर्यसमाजी मूर्ति का निषेध करते थे उसी यश को लेकर मूर्ति सिद्ध हो गई इस कारण हमारा अर्थ मानना पड़ेगा कि उस परमात्मा के तुल्य कोई नहीं क्योंकि वह बड़े यश वाला है।

समाज ने आधा ही मन्त्र लिया यदि पूरा लेता है तो कलई खुली जाती है। पं० कालूराम शास्त्री ने कहा कि इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में "हिरण्यगर्भः" मन्त्र की प्रतीक है अर्थात् यह मन्त्र कहता है कि उस परमात्मा की प्रतिमा नहीं जिसका वर्णन हिरण्यगर्भ मन्त्र में हुआ है।

हिरण्यगर्भः मन्त्र कहता है कि हिरण्यपुरुषरूप ब्रह्माण्ड में गर्भ रूप से जो प्रजापति स्थित है वह हिरण्यगर्भ कहलाता है वह प्रजापति समस्त प्राणियों की उत्पत्ति से प्रथम स्वयं शरीरी उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होने वाले जगत का स्वामी वा प्रजापति अन्तरिक्ष द्यौ लोक को धारण किये हुए है उस प्रजापति की हम हवि से परिचर्या करते हैं।

इस मन्त्र में ईश्वर का शरीरी होना और उसको हवि (भोग) देना लिखा हुआ है फिर मूर्ति का निषेध कैसे। पण्डितजी ने यह भी बतलाया कि इसी मन्त्र से यज्ञ में पुष्कल पत्र पर ईश्वर की मूर्ति बना कर पूजी जाती है यह अर्थ हमारा कपोल कल्पित नहीं है वेद के समस्त भाष्यकार महीधर, उव्वट, सायण ऐसा ही कह रहे हैं। फिर मूर्ति बनाने के लिये इसके ऊपर कल्पसूत्र है वह यह है "अथ पुरुष मुपदधाति स प्रजापतिः सोऽग्निः स यजमानः" इत्यादि यह समस्त सूत्र हमने अपने तृतीय पत्र में रेखा के नीचे लिख दिया है पाठक वहीं पढ़ लें।

फिर पं० कालूराम जी शास्त्री ने लिखा कि केवल कल्पसूत्र ही मूर्ति पूजन नहीं कहता किन्तु "अथ सामगायति" आदि आदि शतपथ कहता है कि जब पुष्कल पत्र में प्रजापति की मूर्ति बनाई तब देवता स्तुति करने लगे। स्तुति के बाद देखा कि इस में चेतना नहीं आई। फिर साम गाया तब ईश्वर प्रकट चेतन हुआ। सनातनधर्म ने शतपथ का भाष्य तो यहां पर ही लिख दिया है और मन्त्र सनातनधर्म के तृतीय पत्र में रेखा के नीचे लिखा है। दोनों प्रमाण देकर सनातनधर्मी पण्डित ने कहा कि आर्यसमाज के पास इसका क्या जवाब है। क्या

मजे की बात रही कि जिस मन्त्र से आर्यसमाज मूर्ति पूजन का खण्डन करने बैठा था उसी मन्त्र से मूर्ति पूजन निकल आया।

सनातनधर्मी पण्डित ने जब प्रतीक का "हिरण्यगर्भः" मन्त्र और उससे बनने वाली मूर्ति, फिर उस मूर्ति में कल्प और शतपथ के प्रमाणों से पूजन की पुष्टि दिखलाई तब फिर आर्यसमाज गुम खा गया (मौनता धारण करली) कुछ भी उत्तर न दे सका। आर्यसमाज के पास इस का कोई उत्तर न उस समय था, न अब है, न आगे को होगा। क्या आर्यसमाज अब भी अपनी हार नहीं समझता? यदि ऐसा है तब तो यह खास निराकार का समझाया भी नहीं समझेगा!

समाज के प्रश्न करने पर शास्त्री जी ने दिखलाया कि "अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत" इस ऋग्वेद के मन्त्र में पूजन करना लिखा है। इसके ऊपर आर्यसमाज ने कहा कि पूजन करना तो इसमें लिखा है किन्तु इस में मूर्तिपूजा नहीं लिखी और हम ईश्वर का रोज पूजन करते हैं। आर्यसमाज ईश्वर का पूजन नहीं करता दबाव पड़ने पर मिथ्या ही कहता है। यहां वेद ने पूजा बतलाई है इस कारण वैदिक पूजा ही लीजावेगी। वैदिक पूजा मूर्तिपूजा है संसार में कोई भी पूजा हो मूर्ति के बिना हो नहीं

सकती। जब हम गुरुजी की पूजा करते हैं तो मूर्ति के द्वारा करते हैं। मस्तक में चन्दन लगाया गुरुजी प्रसन्न हो गये। मस्तक क्या है मूर्ति, मूर्ति में चन्दन लगाने से मस्तकादि अङ्गों में व्यापक गुरु प्रसन्न हुए। इसी प्रकार समस्त ही पूजन मूर्ति के द्वारा हो सकता है बिना मूर्ति के निराकार का पूजन न आज तक हुआ है न आगे को होगा।

मूर्तिपूजा में हमने आवाहन का एक मन्त्र दिया था "एह्यश्मानम्" इस मन्त्र में साफ २ लिखा है कि हे ईश्वर तुम आओ इस पत्थर में ठहरो और यह तुम्हारा शरीर बने (पत्थर की तरह आप का शरीर दृढ़ हो जाय)। आर्यसमाज को जब इसका कुछ उत्तर न सूझा तब लिख दिया कि यह मन्त्र गोदान प्रकरण का है। बनावटी बात झट खुल जाती है। आर्यसमाज में गोदान कैसा? आर्यसमाज के किसी भी ग्रन्थ में गोदान का माहात्म्य नहीं। कैसे ब्राह्मण को गऊ दें यह भी आर्यसमाज के किसी पुस्तक में नहीं। दान में गौ कैसी दें, क्यों दें, यह भी आर्यसमाज की पुस्तकों में नहीं। जब गोदान की विधि भी आर्यसमाज की पुस्तकों में नहीं तब फिर इस मन्त्र को किस गोदानविधि में लगाया?

कौन कहता है कि गोदान के समय में पत्थर रक्खा जाता है फिर ऐसा कौन मूर्ख पंडित होगा जो यजमान को यह कहे कि आओ इस पत्थर में ठहरो और तुम्हारा शरीर पत्थर सा हो जावे। यदि कोई आर्यसमाजी इस मन्त्र को गोदान में लगा दे तो हम उसके जन्म भर ऋणी रहें। जिसमें शक्ति हो लेखनी उठावे। यह भी कोई शास्त्रार्थ है कि जो जी में आया वह लिख दिया।

एक आर्यसमाजी कहता था कि म्यूनिसपेलिटी के पत्थरों पर बैठ कर पाखाने फिरने का यह मन्त्र है। वहां पर गुरु ब्रह्म-चारी से कहता है कि आओ इस पत्थर पर ठहरो और तुम्हारा शरीर पत्थर की भाँति हो जाय-हिले नहीं। इस अर्थ को सुन कर हम हँसे और हमने कहा कि अर्थ तो तुम्हारा चोखा किन्तु इस अर्थ में कुछ प्रमाण है? उसने जवाब दिया कि प्रमाण का अड़ंगा तो सनातनधर्मी लगाते हैं हमारे यहां प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं, यदि कोई भी आर्यसमाजी भाई हमसे प्रमाण मांगेगा तो हम कह देंगे कि ब्रजमोहन झा ने क्या प्रमाण दिया है जो हमसे प्रमाण मांगा जाता है। धन्य है आर्यसमाज को, और उसके किये अर्थ को। पाठक विचार करेंगे कि

आर्यसमाज की ओर से किस प्रकार के निःसार उत्तर दिये जाते हैं।

हमारी ओर से अथर्व वेद का "नमस्तेऽस्तुविद्युते नमस्तेस्तु स्तनयत्नवे। नमस्तेस्तु अश्मने"। मन्त्र देकर दिखलाया गया था कि वेद ने यहाँ पर पत्थर से प्रणाम करना बतलाया है यह मूर्तिपूजा करनी नहीं तो और क्या है। आर्यसमाजी महाशय बिना ही हिंगाष्टक चूर्ण खाये इस मन्त्र को हजम कर गये। इसका कुछ भी उत्तर न दिया। आर्यसमाज शास्त्रार्थ कर रहा है या बच्चों का खेल। कहीं पर कुछ कह दिया और कहीं पर मौन हो गया। क्या सर्वत्र आर्यसमाज ऐसे ही शास्त्रार्थ किया करता है और ऐसे ही शास्त्रार्थ करके अखबारों में अपनी जीत छपवाया करता है। अधर्म का काम करते हुए आर्यसमाज को तनक भी लज्जा नहीं आती। शोक है ऐसी वैदिकता पर!

पं० कालूराम जी शास्त्री ने "षड्विंश" ब्राह्मण का "यत्रादेवा यतनानि' मन्त्र देकर बतलाया कि संसार में जब कोई बड़ी भारी आपत्ति आती है तब मूर्तियां रोना हंसना आदि काम करने लगती हैं। इस के ऊपर आर्यसमाजी महाशय कहते हैं कि यह ग्रन्थ ही अवैदिक है, हमें प्रमाण नहीं। बहुत ठीक, आप के

'अवैदिक' को हमने पृष्ठ १६७ की टिप्पणी में 'वैदिक' दिखला दिया है, ज़रा पढ़ के देखिये। अभी क्या हुआ अभी तक तो आर्यसमाज ने पुराणों को छोड़ा था आज ब्राह्मणों को छोड़ता है। आगे को स्वामी दयानन्द के लेख छोड़ेगा फिर वेद छोड़ेगा। ब्राह्मण ग्रन्थ भी उसे प्रमाण नहीं! जिस मन्त्र को स्वामी दयानन्दजी ने प्रमाण माना और पं० तुलसीराम स्वामी ने जिसको प्रमाण मानकर भास्कर प्रकाश में इसका अर्थ लिखा वही मन्त्र आज भी जी को प्रमाण नहीं? आप जिन ग्रन्थों को प्रमाणिक या अप्रमाणिक मानते हैं उन्हें धर्मशास्त्र के वचन से मानते हैं अथवा अपने मन से ही? इसका उत्तर दीजिये। नहीं तो साफ़ २ कहिये कि इस मन्त्र का आर्यसमाज के पास कुछ उत्तर नहीं है।

सनातनधर्म की ओर से यह दिखलाया गया कि आर्यसमाजी भाई जो संध्या करते हैं वे इस बात को अच्छी प्रकार जानते हैं कि संध्या में मनसा परिक्रमा होती है। मन से ही ईश्वर के चारों तरफ़ घूमना पड़ता है। बिना मूर्ति बनाये, बिना रूप कल्पना किये, चारों तरफ़ कोई घूम नहीं सकता। आप जिस समय मनसा परिक्रमा करते हैं उस समय सच तो बतलाइये ईश्वर की कितनी बड़ी मूर्ति बनाते हैं? मन से ईश्वर के चारों तरफ़ घूमना क्या यह मूर्तिपूजा नहीं है? इसका उत्तर आर्य-

समाज ने कुछ भी नहीं दिया। श्रोता जनाब उत्तर दें या न दें किंतु जीत तो आर्यसमाज की ही होगी! भला ऐसे न्याय का कौन ठिकाना। क्या इसका उत्तर बाईसवीं शताब्दी में दिया जावेगा?

आर्यसमाज ने कहा कि निराकार साकार ईश्वर के सामने से मूर्ति विरोध आड़ दिया। इसके उत्तर सनातन तरफ से उत्तर दिया गया कि निराकार को साकार बनने में कोई विरोध नहीं होता। आर्यसमाज निराकार ओंकार की मूर्ति बना कर मस्तक पर लगाता है और निराकार विद्युत को आकार में साकार बना कर बल्ब) में देखता है उसमें विरोध क्यों नहीं। इसके उत्तर में आर्य-समाज ने चुप्पी साध ली।

आर्यसमाज वेद में से "अकायम्" यह एक मन्त्र तो निरा-कार में देता है और वहाँ साकार में दिया है और न स्वयं प्रसिद्ध अर्थ, "अन्धंतमः प्रविशन्ति" ये दो मन्त्र मूर्ति खण्डन में रखता है। इस शास्त्रार्थ में निराकार का एक मन्त्र दे दिया और मूर्तिपूजा का भी एक मंत्र दे दिया अब एक मन्त्र और रह गया। सनातनधर्मी पण्डित ने सोचा कि पिछला पर्चा आर्य समाज का है और आर्यसमाज "अन्धंतमः प्रविशन्ति" इस मंत्र को पिछले पत्र में लिखेगा फिर हम कुछ उत्तर नहीं दे सकेंगे इस कारण वह मंत्र पं० कालूराम जी शास्त्री ने अपने आप लिखा

कि इस मंत्र से भी आर्यसमाज मूर्तिपूजा का खण्डन किया करता है। इसमें मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं किन्तु नास्तिकों का खण्डन है। और स्वामी दयानन्द जी ने जो इससे मूर्तिपूजा का खण्डन किया है उनका अर्थ गलत है। आर्यसमाज ने इसके ऊपर उत्तर दिया कि इसमें मूर्तिपूजा का कोई जिक्र नहीं। खूब कहा, ठीक उलटा मुकदमा स्वामी दयानन्द जी का हुआ जिन्होंने इस मंत्र से मूर्तिपूजा का खण्डन किया है। क्या मजे की बात है, स्वामी दयानन्द जी इस मन्त्र से मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं और समाजी [illegible] कहते हैं कि इसमें मूर्तिपूजा का कोई जिक्र ही नहीं, अच्छी रही।

[illegible] "[illegible] न [illegible]" यह श्रुति [illegible] कोई कारण नहीं मानी। आर्यसमाज ने [illegible] कृष्ण-हनुमान की मूर्ति-पूजा [illegible]। हम ने [illegible] कृष्ण के अवतार में दो [illegible]। आर्यसमाज [illegible] है कि किस [illegible] है। इस मन्त्र पर निरुक्त नहीं। इन [illegible] आर्यसमाज निरुक्त लिखा हुआ है। हमने जो इसका अर्थ बतलाया है वही अर्थ नीलकंठ भाष्य पर भी लिखा है। कृष्णावतार के मंत्र को

आर्यसमाज ने स्वीकार कर लिया उस पर कुछ नहीं कहा।

प्रभु रामचन्द्र और कृष्णचन्द्र विष्णु के अवतार हैं और हनुमान रुद्रावतार हैं रुद्र और विष्णु की मूर्ति का पूजन वेदों में सनातन से चला आता है। हम पीछे लिख चुके उनके ऊपर आर्यसमाज से जवाब नहीं बना। विष्णु रुद्र जितने नये नये शरीर धारण करते हैं उन सब की मूर्ति पूजना विष्णु और रुद्र पूजा है।

आर्यसमाज पूछता है कि तुम व्यापक को पूजते हो या व्याप्य को। इसका उत्तर यह है कि हम मूर्ति के ज़रिये से व्यापक को पूजते हैं। आर्यसमाज ने कहा कि मूर्ति कितना बड़ी हो यह वेद से बतलाओ। हम पीछे यजु० अ० २७ मं० ९ का शतपथ दे कर बतला चुके हैं। यह आर्यसमाज के अन्तिम पत्र के फुटकर प्रश्न हैं ब्रजमोहन झा ने जब देखा कि वेद में तो आर्यसमाज हार गया तब यह फुटकर प्रश्न किये।

आर्यसमाज के विद्वान् कहते हैं कि इस शास्त्रार्थ में सनातन की तरफ से एक दो मन्त्र दिये गये हैं, इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूं पाठक निर्णय करें कि सनातनधर्म की तरफ से सब ही वेद के एक दो मन्त्र हैं या पच्चीस तीस हैं। हाँ समाज की तरफ से एक "स पर्यगात्" और दूसरा 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' यही दो मन्त्र दिये गये हैं शेष उपनिषद् की

श्रुति और पुराणों के श्लोक दिये हैं इतने पर भी सनातनधर्म के दो मन्त्र बतलाए जाते हैं यह लज्जा की बात है !

ब्रजमोहन झा ने पुराणों को लेकर मूर्तिपूजन का खण्डन करना चाहा। आर्यसमाज रोज २ रंग बदलता है। एक दिन तो वह था कि आर्यसमाज पुराणों को मिथ्या बतलाता था किन्तु आज उनको प्रमाण मान कर उनसे मूर्तिपूजा का खण्डन करता है। हम ने लिखा कि क्या आप पुराणों को मानते हैं ? उत्तर मिला कि हम नहीं मानते आप तो मानते हो। ऐसे अवसर पर यदि हम पुराणों से मूर्तिपूजा सिद्ध भी कर दें तो फिर आर्यसमाज कहेगा कि पुराणों से सिद्ध मूर्तिपूजा को हम नहीं मानते। तब तो हमारा परिश्रम ही व्यर्थ हुआ। इस कारण हमने पुराणों का सूक्ष्म उत्तर दिया है। वह इस प्रकार है कि भागवत के श्लोक का तो हमने समझकर उत्तर दे दिया शेष पुराणों की बाबत वेद वाला उत्तर काफी है। जिस प्रकार वेद में ईश्वर निराकार और साकार वर्णन किया गया है इसी प्रकार पुराणों में भी दो प्रकार का ईश्वर बतलाया गया है।

निराकार के प्रमाण ब्रजमोहन झा दे चुके साकार के लिये ब्रह्मावतार, वामनावतार, व्यासावतार, बुद्धावतार, यज्ञावतार हर्यावतार, नृसिंहावतार, मत्स्यावतार, कच्छपावतार, रामावतार कृष्णावतार, कल्क्यवतार, इत्यादि पुराणों में असंख्य अवतार

लिखे हुये हैं। मूर्तिपूजा भी लिखी है। हमने शास्त्रार्थ में लिख दिया कि विदुर ने मूर्तिपूजा की, चक्रवर्ती राजा अम्बरीष और ध्रुव ने की। लिखने के अतिरिक्त मारकण्डेय का शंकर का पूजन करना, विष्णु का शंकर पूजन करना, शंकर का विष्णु पूजन करना, देवताओं का विष्णु तथा शिव, गणेश, सूर्य, दुर्गा पूजन करना आदि २ अनेक पूजन लिखे हैं।

ब्रजमोहन झा ने कहा कि यदि पुराण ईश्वर को दो प्रकार का कहेंगे तो यह तो व्याघात दोष आ जावेगा। साकार और निराकार दो प्रकार का ईश्वर कथन से जब वेदों में व्याघात न आया तो पुराणो में कैसे आजावेगा ? ब्रजमोहन झा ने कहा कि ऐसी दशा में दो ईश्वर मानने होंगे एक साकार दूसरा निराकार। इस प्रश्न पर हँसी आती है। बच्चों कैसा प्रश्न है। जब व्यापक अग्नि निराकार रूप से रहता हुआ भी दृश्य रूप से साकारता दिखाता हुआ भी एक है तो ईश्वर दो क्यों हो जावेंगे॥ जीव निराकार होता है, मगर निराकार जीव साढ़े तीन हाथ का कृपाशंकर रूप साकार बन गया और वह जीव फिर एक रहा तो क्या ईश्वर अग्नि जीव से भी निर्बल है। पाठक शेष अपने चित्त से विचार करें ॥ शुभम् ॥

तृतीय शास्त्रार्थ समाप्तः

टिप्पणी-खण्ड

श्रीहरिः

भूमिका

प्रिय पाठकगण इस भारतीय वसुंधरा में विविध जन समुदाय अपनी बुद्धि के मिथ्या बल पर सदैव अनेक चमत्कार दिखाया करते हैं। देखिये इस वर्ष श्रीमर्यादापुरुषोत्तम सनातन धर्म सभा के तृतीय वार्षिक उत्सव में हमारे प्रिय आर्यसमाजियों ने 'पुराण वैदिक हैं या अवैदिक, इस विषय में शास्त्रार्थ किया। यद्यपि आर्यसमाज की ओर से और भी योग्य पंडित थे पर ब्रजमोहन झा जी ने ही सनातन धर्म सभा के श्री पं० गिरिधराचार्य जी के साथ यथा बुद्धि शास्त्रार्थ किया। पर विद्वानों के साथ ये लोग धार्मिक विषय पर कहां तक चल सकते हैं। झा जी ने बहुत कुछ उछल कूद मचाई पर अंत में पुराणविद्या का लक्षण कहते हुये उन्हें इन अष्टादश पुराणोंकी वैदिकता स्वीकार करनी ही पड़ी। देखिये सत्य इसी को कहते हैं जो विपक्षियों को भी खींच कर अपने में मिला ले। कहां तो आप घोर समाजी और कहाँ पुराण की वैदिकता स्वीकार। विद्या और पांडित्य इसी को कहते हैं। अब जो यह लोग अनुचित उक्तियां इधर उधर करते है यह उनकी परम भूल है। और जो इनके समाचारपत्रों में शास्त्रार्थ

विषयक सम्मतियां छपी हैं वे सर्वथा अनाप्तजन लिखित हैं। प्रथम तो वे संपादक आर्यसमाजी ही हैं दूसरे संस्कृत विद्या से वंचित। ऐसे लोगों की सम्मतियों से किसी का कभी भी लाभ नहीं हो सकता क्योंकि वे उचित सम्मति लिख ही नहीं सकते।

अब हमारी प्रार्थना समाजी भाइयों से यह है कि (भ्रान्तिर्मनुष्य दोषः) भूल सब से हो जाती है किन्तु जब ठीक ज्ञान हो जाय तभी से ठिकाने पर आजाने में कोई हानि नहीं। अब आप लोग पुराणों को वैदिक मान कर उन से उत्तम ज्ञान प्राप्त कर अपनी उन अधम क्रियाओं का प्रायश्चित्त करिये कि जिससे उनके सरल और कठिन विषय हस्तामलकवत् प्रतीत होने लगें।

विष्णुदयाल मिश्र।

श्रीहरिः

आर्यसमाज के छपाये हुए "कानपुर शास्त्रार्थ" में "पुराण वैदिक हैं या अवैदिक" इस शास्त्रार्थ की टिप्पणियों का खण्डन।

(क्रम संख्या और पृष्ठ संख्या देकर जो ऐसे ( )निशानों के बीच में छपा है वह आर्यसमाज की टिप्पणी है। इसके पश्चात् उसी टिप्पणी का खंडन है)।

१ (वास्तव में यह मंत्र एकादश काण्ड अ० ४ सू० ६ का है) पृ० २६।

महाशय ? यदि आपने अपनी अथर्वण वेद संहिता को देख लिया होता तो ऐसा न लिखते जैसा ११। ४। ७। २४ के स्थान में ११। ४। ६ लिखते हैं। ७ की जगह ६ क्यों ? तिस पर भी मंत्र संख्या का अभाव !

२ (इस मंत्र पर सायण भाष्य ही को यदि आपने देख लिया होता तो आपको निश्चय हो जाता कि पुराण शब्द "पुराण विद्या" से सम्बन्ध रखता है न कि इन अष्टादश पुराणों से) पृ० २०।

सायण भाष्य को ही देख कर आपने क्या किया ? पुराणम् पुरातनवृत्तांतकथनरूपमाख्यानम्। प्राचीन प्रवृत्ति (पुरानो

स्थिति) कहने वाली कथा पुराण है। इस सांधे सा० भा० ग्रोक पुराण शब्द के अर्थ को ऐसा क्यों घुमाते हो ? महाशय ! वे दिन अब नहीं हैं कि जब सर्प पकड़ने की विधि मंत्र भाष्य में लिखी गई थी।

३ (भा०— नवमस्कंध अ० १४ श्लोक १ से १४ तक यह कथा है। चन्द्रमा ने अपने गुरु की स्त्री तारा को जबरदस्ती रख लिया। और आचार्य के याचना करने पर भी न दिया। पुनः सुरासुरविनाशी भूत्समरस्तारकामय: अर्थात् तारा के कारण सुर और असुरों में बड़ा भारी युद्ध हुआ।......) पृ० २८। २६। ३०।

आपकी दृष्टि अश्लीलता पर ही रहती है या और भी कहीं ? शुद्धांतः करण में प्रतीत होनेवाले विषय मलिनांतः करणों में कैसे आसकते हैं। निखिल पौराणिक रहस्य आप इसी २ घंटे के शास्त्रार्थ में समझना चाहते हैं, सो कठिन है। जब आप अपनी की हुई "पुराण अवैदिक है" इस प्रतिज्ञा को ही भूले जाते हैं तो कथाओं के तत्त्व कौन समझेगा ?

४(पाठको ? वह वाक्य यही हैं जिनके लिये कि पंडित जी को प्रायश्चित्त करना चाहिये) पृ० ३४

महाशयजी ! अश्लील शब्द का अर्थ आप क्या करते हैं। "ग्राम्यमश्लीलम्" इस कोश वाक्य से ग्राम्यशब्द" गवांरू शब्द" अश्लील है। क्या वेदों में ग्राम्यशब्द नहीं आये इसे किसी समाजी विद्वान से ही पूछ लेते। "क्या वेदों में अश्लीलता नहीं है" इसमें किस श्रुति वा स्मृति से वेदनिंदा हुई सो तो लिखना था ; हमको ही वेद का प्रमाण देना चाहिये आपको नहीं ? महाशय ! ऐसे वाक्छलों से आर्यसमाज भले ही धर्म से विचलित हो जाय पर शुद्ध हिन्दुसन्तान कभी भी धर्म से विचलित नहीं हो सकता।

८ [किसी शिखा सूत्रधारी के लिये वेदों की निन्दा से अधिक और पाप हो ही क्या सकता है] पृ० २४

क्या कहना है ! साक्षात् शंकराचार्य की सभा इस समय आर्यसमाज रेलबाजार हो गया। कहिये महाशयजी ! शुद्धि करने के समय में भी आपको यह ज्ञान रहता है या अभी उत्पन्न हो आया। मन्त्रों के अनर्थ करके विधवाविवाहादि कराना पातक नहीं है ? जरा धर्मशास्त्र को तो देखिये। "नानृतात्पातकं परम्" इस वचन से किसी योग्य विद्वान् पर दोषारोपण करने से आप ही लोग परम पातकी सिद्ध होते हो, निन्दा का अर्थ कुत्साग-र्हण है या अश्लीलता बताना ?

६ [केवल पुराण के शब्द के वेदों में आ जाने से यदि पुराण नामधारी समस्त के सब पुस्तक वेदानुकूल मान लिये जांय तो वेदों में इतिहास शब्द भी आया है अतः औरंगजेब आदि के इतिहास भी वेदानुकूल ही मानने पड़ेंगे किन्तु ऐसा हो नहीं सकता अतः स्पष्ट है कि वेद में आगत इतिहास पुराण आदि शब्दों से उन २ विद्याओं का ही ग्रहण किया जाता है न कि इतिहास या पुराण नामधारी किन्हीं ग्रन्थ विशेष का] पृष्ठ २५

भला क्यों जी ! इतिहास पुराण का लक्षण जहां जहां मिले वह सब इतिहास पुराण नहीं है ? इस पर कोई प्रमाण भी दिया होता । प्रमाण दें कहां से, यहां तो महा दयानन्द भाष्यमाध्य ही वेद हो रहा है । "ग्रहण" का "गृहण" ? कैसे यहां संप्रसारण हुआ । आपके स्नातक और पंडित निन्दा करने ही में प्रवृत्त रहते हैं या कभी शास्त्रीय समीक्षण में भी ?

७ [इस स्थान पर पं० गिरिधर शर्मा ने सनातनधर्म को श्री रहित कर दिया] पृ० २६

वाह क्यों न हो ! पीलिया के रोगी को विश्व पीला ही दिखाई देता है । श्रीरहित होने की बात तो ब्रजमोहन झा

स्मृति आप के समाजी तख्त टूटने के समय चित्त ही में जाम गये थे। आप इधर कहां आते हैं घर ही में क्यों नहीं पूछ देखते ?

८ [वास्तव में उस दिन उत्सव श्रीरहित हो ही गया था] पृ० ३६, १७

उत्सव तो श्रीरहित नहीं हुआ था पर आर्यसमाजी अवश्य श्रीहत हो गये थे। क्यों महाशय ! रात्रि में श्री पं० अखिलानन्द जी शर्मा ने किस भांति समाज और उसके अनुयायियों को विशिष्ट श्री से विभूषित किया था ? इतना शीघ्र आपकी स्मृति ठिकाने ? उस समय तो सभास्थ प्रत्येक पुरुष समाजियों को धिक्कार देता था तब भी हमारा ही उत्सव श्री रहित हुआ ?

९ [(२) इस विद्या का उपदेश मात्र हम वेद में मानते हैं न कि ब्राह्मण ग्रन्थों का उल्लेख] पृ० ३७

क्या इससे पुराणों की वैदिकता आपने स्वीकार नहीं की ? ब्राह्मण ग्रन्थों को क्यों मानियेगा उन पर तो प्रायः वही सायण भाष्य है जिसके पुराण शब्द के अर्थ जानने में-श्रीमान् के पांडित्य का परिचय मिलता है। यदि दयानन्दीय भाषा भाष्य उन पर भी

होता तो आप मानते।

१० [यह श्लोक पुराण ही का है ऐसा कहना युक्त नहीं] पृ० ३७

आप इस समय निन्दा के नशे में होकर और ही कुछ लिखते हैं। पं० जी ने "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च" श्लोक तो "पुराण का है" कहा था पर आप 'पुराण ही का है' लिखते हैं भला इस झूंठ का आप कौन प्रायश्चित्त करेंगे ? इन दोनों वाक्यों के अर्थ में कुछ भेद है या नहीं ? जिन्हें यह तक नहीं मालूम वे "पुराण अवैदिक है" कहें तो क्या आश्चर्य। पर चाहे जो हो हम व्या० वा० तो हुये। सज्जनो ! ऐसे ही महानुभाव लोग समाज में पंडित शिरोमणि कहे जाते हैं !

११ [देखिये शुक्र नीति अध्याय ४ श्लोक ६३। ६४ में सब विद्याओं का लक्षण लिखते हुये पुराण के विषय में लिखा है:—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं यस्मिन् पुराणं तद्धि कीर्तितम्॥

अर्थात् जिसमें सर्ग प्रतिसर्गादि विद्या हो उन्हीं को पुराण कहते है इन अठारह से कोई सम्बधं नहीं] पृ०३७

क्यों महाशय ! आपका यह पुराण लक्षण इन १८ पुराणों

में घटता है या नहीं सो विचारिये । यदि आप के कथनानुसार अन्य ही पुराण विद्या मान लें तो भी यह आप का लक्षण इन १८ में घटित होने से अतिव्याप्तिदोषग्रस्त हुआ । उसका भी तो निराकरण करना था । यों ही बातों से काम न चलेगा । मानते हुये भी आप नहीं मानते । सज्जनो ! यह प्रभाव सनातन-धर्म का है जो आज घोर समाजी ने भी इन १८ पुराणों की वैदिकता स्वीकार करली । इस समय आस्तिकों को श्रीपं०गिरिधराचार्य जी यही धर्मोद्धारक अधर्मकुलविदारक साक्षात् गिरिधर सदृश दिखाई देते हैं ।

१२ । (२) ब्राह्मणों में वर्णित विद्या बीज रूपेण वेद में अवश्य है । यदि वेदों में न होती तो ऋषि उसे कहाँ से ले आते ? ब्राह्मणों को हम वेदानुकूल होने ही से प्रमाण मनते हैं । ऐसी दशा में सिद्धान्त विरोध कुछ भी नहीं होता पृ० ३७

कहिये महाशय ! शतपथ ब्राह्मण कां० १४ पृ० ७ अ० ६ में सयामिच्छेत् कामयेतमेति तस्यामर्थंनिष्ठाप्य मुखेन मुखᳫं संधायोपस्थमस्या अभिमृश्य जपेदंगादंगात्संभवसि हृदया-दधिजायसे । सत्वमगकषायोसि दिग्धविद्धामिव मादयेति ॥ ८ ॥ अथ यमिच्छेत न गर्भं दधीतेति तस्यामर्थंनिष्ठाप्य मुखेन मुखᳫंसंधायाभिप्राण्यापादीन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदद इत्यरेता एवभवति ६

भावार्थः—मनुष्य जिस स्त्री को चाहे कि यह मुझे इच्छा

करे तो उस स्त्री में वीर्यदान करके मुख में मुख मिलाकर उसके उपस्थ प्रदेश को छूकर यह मंत्र जपे—

अंगादंगात्........ मादयेति ॥ ८ ॥

जिस स्त्री को चाहे कि यह रति करने पर भी गर्भ को न धारण करे तो उस में वीर्यदान करके मुख मिलाकर यह मंत्र जपै

अभिप्राण्यापान्यादि..................रेतआदद इति ।

इससे वह वीर्य रहित हो जाती है ॥ ९ ॥

इन मंत्रों से प्रतिपाद्य कर्म आपके यजुर्वेद में बीज रूपसे कहां है सो तो बताइये! कहिये यहां आपको नई अश्लीलता है या नहीं? यदि है तो बतलाइये यह कोकशास्त्र अजमेर के सरस्वती यंत्रालय की छपी पुस्तक में समाजी पंडितों ने क्यों रक्खा? दिखलाइये इन पर निरुक्त का अर्थान्तर।

१३ [इन मंत्रों में कुछ भी अश्लीलता नहीं है। निरुक्त अ० ४ खं० २१ में स्पष्ट लिखा है। तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः अर्थात् जब मेघ पृथिवी में जल को धारण करता है तब अन्नादि उत्पन्न होते हैं जार शब्द से भी सूर्य का ग्रहण किया है। देखो निरुक्त अ० ३ खं० १६ जार इव भगमादित्योऽत्रजार उच्यते रात्रेर्जरयिता। सूर्य रात्रि का जार है। शोक है कि ऐसी उत्तम अलंकार पूर्ण कथाओं में भी अश्लीलता की आशंका की जाती है।] पृ० ३८

यहाँ समाजी ने कैसा अधर्म किया है । देखिये, निरुक्त के पूर्व षटक अ० ४ मं २१ में "द्यौर्मे पिताजनिता" इस मंत्र का व्याख्यान है उसके कुछ पद उठाके टिप्पणी में लिखा है । पिता यत्स्वाम्" इसका निरुक्त है ही नहीं । जब इसका निरुक्त ही नहीं तब उसको निरुक्त के नाम से कहना कैसा अनुचित काम है ।

महाशय ? "दिधिषुमग्र्युवन्" । स्वसारंजारो अभ्येति पश्चात् इन वाक्यों का निरुक्तकार ने क्या अर्थ किया है ? सो भी तो लिखते । हम से ही मंत्र भाष्यों का भाषा कराना जानते हो या स्वयं भी कुछ दिखलाने की शक्ति रखते हो । अब तो आप के मन में भी वैदिक अश्लीलता सिद्ध हो गई । कहिये इस प्रायश्चित्त की कौन सी विधि और किस दिन आप करेंगे ?

१४ (वेदों मे ऐसी कथायें हैं ही नहीं अतः विरोधः प्रतिपाद्-नार्थ मंत्र देने की कोई आवश्यकता नहीं । वेदों में ऐसी बातों के होने से विरोध स्वतः सिद्ध है ।

भगवान् विष्णु का दैत्यों से द्वेष करना, उनके साथ [illegible] का त्याग करके छल करना, अपने पातिव्रत धर्म का विचार न करके तारा आदि का चन्द्रमा के साथ व्यभिचार में प्रवृत्त हो जाना आदि कथाएं "मित्रस्य चक्षुषः समीक्षामहे" सब को मित्र [illegible] से देखो, "अनृतात्सत्यमुपैमि" झूठ छोड़कर सत्य का अवलम्बन करो, "जाया पत्ये मधुमती वाचं" स्त्री पति का प्रिय कार्य करे इत्यादि मंत्रों के प्रत्यक्ष विरुद्ध है ।

पबलिक् देखती है कि हमने आपकी प्रत्येक बात का (प्रकरण विरुद्ध होने पर भी) उत्तर दिया है किन्तु आपने हमारी प्रस्तुत कथाओं का स्पर्श भी नहीं किया। अष्टादश पुराणों का जिक्र भी आप किसी वेद में नहीं दिखा सके। दिखलाते भी कहां से। 'अष्टादशपुराणानां कर्ता सत्यवती सुतः' के अनुसार आप भी तो इन्हें व्यास निर्मित ही मानते हैं अतः सिद्ध हो गया कि वेद में आगत पुराण शब्द से तात्पर्य पुराण विद्या से है। उस पुराण शब्द का इन अष्टादश पुराणों से कोई सम्बन्ध नहीं और इनके अन्दर अनेक असम्बद्ध और अश्लील कथाओं का वर्णन होने से ये सर्वथा वेद विरुद्ध हैं।] पृ० ४१

अपने छपाये हुये "कानपुर शास्त्रार्थ" नामक पुस्तक में यह २० पंक्ति का लेख अधिक बढ़ा कर आपने अपनी न्यायपरायणता का ठीक २ परिचय दिया है। ऐसी अधर्मयुक्त लेखवृद्धि समाज के असत् सिद्धान्तों को सत् नहीं बना सकती। कहिये मिश्रजी! स्वामीजी का बताया सालममिश्री वाला मिश्रीकरण आप को भी याद हो गया।

१५। कानपूर समाचार ता० १४ अप्रेल १६१८

मर्य्यादा पुरुषोत्तम सनातन धर्म सभा का वार्षिकोत्सव... समाप्त होगया। खूब चहल पहल रही। रेलबाजार आर्यसमाज से छेड़ छाड़ भी हुई और अन्तिम दिन एक छोटा सा शास्त्रार्थ

भी होगया ... ऐसे शास्त्रार्थ का जो फल होता है वही इसका भी हुआ...एक उर्दू कवि ने कहा है "मुर्ग लड़ते हैं एक दो लातें। सैकड़ों इन सफीहों की बातें' पं० गिरिधर शर्मा का यह कहना कि वेदों में भी पुराणों की तरह अश्लीलता है लोगों के लिये एक नई और आश्चर्य में डालने वाली बात थी पं० गिरिधर शर्मा के इस विचार से कोई हिन्दू सहमत न होगा] पृ० ४२

यह लेख भी अपने ढंग का है। जिसे शुद्ध हिन्दी भाषा नहीं लिख आती वह यदि पंडितों के लेख वा कथन पर आश्चर्य करे तो कोई आपत्ति नहीं। आपने सकल हिन्दुओं की ओर से सम्मति भी प्रकट की है। इस लेख पर जो टिप्पणी शिवशंकरजी मिश्र की है वह पर्याप्त है और हम भी आशा करते हैं कि सम्पादक कानपुर समाचार फिर कभी इस प्रकार धार्मिक विषयों की समालोचना में प्रवृत्त न होंगे क्योंकि यहां योग्य पुष्पों से इनकी उचित पूजा मिश्रजी द्वारा हो गई।

१६ [कानपुर गजट ता० १५—४—१८ सफा ८

पं० गिरिधर शर्मा का गैर मुनासिब जवाब। ● अपरैल को कानपुर की मर्य्यादा पुरुषोत्तम सनातनधर्म सभा का सालाना जल्सा था जिसमें आर्यसमाज रेल बाजार और सभा मजकूर के माबीन "पुराण वेदों के अनुकूल हैं या नहीं" के मजमून पर शास्त्रार्थ हुआ आर्य पंडित ने पुराणों के चन्द शरमनाक वाकआत का हवाला देते हुए दरयाफ्त किया कि क्या वे किताबें जिनमें फुहश और

गंदी बात लिखी हों वेदों के अनुकूल हो सकती हैं। इसका जो जवाब श्रीमान् पं० गिरिधर शर्माजी साबिक प्रिंसिपल ऋषिकुल हरद्वार ने दिया उस पर न सिर्फ आर्य इसहाबहैरान हुये बल्कि अकसर सनातनी भाइयों ने भी इजहार नाराज़गी ज़ाहिर किया......] पृ० ४३

इस लेख के लेखक केवल अनापत्तता का आपत्तास्पर्श तक न करते होंगे। ऐसे संपादकीय लेखों से कानपुर गज़ट के पाठक क्या लाभ उठाते होंगे ? यदि किसी विद्वान् से पूंछ लेते तो यह दशा आपके लेख की न होती गवांरू शब्द का अनुवाद फुहश और गंदी बात नहीं हो सकती। अश्लील ग्राम्य गवांरू शब्द है। तिस पर भी सरासर झूंठ है। यह लेख आपकी योग्यता का ठीक २ परिचायक होगया। आप पहिले संस्कृत कोश देखिये तब उर्दू में अनुवाद करके नवयुवकों को भड़काइये। पाठक! जिस भाषा में कृष्ण का किशन, ब्राह्मण का बरहमन लिखा जाता है उसमें समालोचक वैदिक संस्कृत शब्दोंका वास्तविक अनुवाद कैसे कर सकता है और सरासर झूंठ लिख लिख कर जनता के ऊपर बुरा प्रभाव डालने वाले इन समाजी महात्मा की गणना सभ्य जनों में कैसे की जा सकती है ? आपने स्वयं ही सिद्धान्तपत्र भी लिख डाला। भला किसी उत्सव वालेसे भी पूंछा था कि सफेदी में स्याही ही लगा दी ? बिना बिचारे कार्य करने से विद्वद्वृन्द में तो प्रतिष्ठा होती नहीं किंतु अज्ञों में हो जाती है। महाशय! अब कभी मशीनो

शास्त्री शर्माओं के चक्र में पड़ कर पंडितों के विपक्षी लेख कदापि लिखने का साहस न कीजियेगा अन्यथा बड़ी ही उत्तमता से संस्कृत किये जांयगे।

१७ [कानपुर में शास्त्रार्थ। पण्डित गिरिधर शर्मा शिकञ्जे में। आर्य्यसमाज की अज़ीमुश्शानफ़तह। ७ अप्रैल १९१८ को सुबह को मर्य्यादापुरुषोत्तम सनातनधर्म सभा कानपुर और आर्यसमाज रैलबाजार कानपुर के माबीन "पुराण वेदानुकूल हैं या नहीं" पर जो सदारत बाबू गिरिधर दास जी वकील मंत्री ब्रह्मावर्त सनातनधर्म महामण्डल हुआ। आर्यसमाज की तरफ से पण्डित व्रजमोहन झा और सनातनधर्म की तरफ से पण्डित गिरिधर शर्मा साबिक प्रिंसिपल ऋषिकुल हरद्वार बोलने वाले थे। पहिले तो सदर जलसा ने शास्त्रार्थ करने से इनकार किया लेकिन फिर जब देखा कि आर्यसमाज किसी तरह पीछा नहीं छोड़ता तो लाचार होकर शास्त्रार्थ करना मंजूर किया। इस शास्त्रार्थ से सनातन धर्म सभा को जो शकिस्तफ़ास मिली उसको याद कभी नहीं भूलेगी। श्रीपण्डित गिरिधर शर्मा जी ने वेदों के मुताबिक अपने निज ख्यालात का इजहार किया है उस पर तमाम आर्य व हिन्दुओं ने इजहार नाराज़गी किया और पबलिक को मालूम हो गया कि पुराण जो फुहश और लचर तहरीरात से पूरे हैं आर्य हिन्दू धर्म की मुस्तनद किताबें नहीं हो सकतीं] पृ०४५

कहिये महाशयजी ! "शिकंजे", "अजीमुश्शानफतह", "माचीन", "शकिस्ते फाश", "फुहश" "लचर तहरीरात" आदि आदि आर्यभाषा के शब्द हैं ? इस लेख के समय आपकी आर्यता कहाँ चली गई ? क्या मन्त्रों के बदले ये शब्द प्रयोग किये हैं ? इन अनार्य भाषा शब्दों के लेख से पंडितों के साथ शास्त्रार्थ में विजय नहीं मिल सकती इनसे तो आप केवल हंसी के पात्र समझे जांयगे ।

पाठक वर्ग ! इनके यहाँ स्वामीजी ने सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग जो नियम लिखा है उस का अर्थ समाजी भाई इस समय सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण मान रहे हैं । "नानृतात् पातकंपरं" इसे तो मानते ही नहीं । केवल दुराग्रह के और कोई तात्विक बात आर्यसमाज में पाई नहीं जाती ।

हे प्रभो ! इन असार वादियों के चित्त कजों में उत्तम ज्ञान की स्फुर्ति कीजिये जिससे अब सभ्यसमाजों में इन भ्रम में भटके हुये आर्यसमाजियों की ऐसी हंसी न हुआ करे और ये सदा दुराग्रह रोग से शुद्ध हो आपकी यथाशक्ति सेवा में सम्मिलित हुआ करें ।

हरि ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!